विकार

गुरुदत्त



विकार

इस माला में लेखक की रचनाएँ

भूल
विश्वास
प्रगतिशील
भद्रपुरुष
जात न पूछे कोय
वनवासी
चंचरीक
भैरवी चक्र
विकार

विकार



गुरुदत्त



ऋचा प्रकाशन, नई दिल्ली

VIKAAR by Guru Dutt

प्रकाशक : ऋचा प्रकाशन
नई दिल्ली-११००२६

वितरक : भारती साहित्य सदन
३०/९०, कनॉट सर्कस (मद्रास होटल के नीचे)
नई दिल्ली-११०००१

संस्करण : जुलाई १९९२

मुद्रक : अजय प्रिण्टर्स
नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

भूमिका

भारतवर्ष में स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त भौतिकवादियों का नया युग आया है। यों तो इसका बीजारोपण अंग्रेजी राज्य-काल में ही हो गया था, परन्तु इसका विस्तार स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त ही हुआ है। आधार में भौतिकवादी शिक्षा होने से यह विस्तार हुआ है।

भौतिकवादी शिक्षा का अर्थ है भौतिक उन्नति को लक्ष्य बनाकर निर्माण किया गया पाठ्यक्रम और उसको पढ़ने से सुख की प्राप्ति की आकांक्षा। भौतिकवादी लक्ष्य से अर्थ है मानव से यह स्वीकार कराना कि वह केवलमात्र शरीर है और शारीरिक सुख की उपलब्धि ही परम साध्य है।

इस भौतिकवादी शिक्षा का परिणाम यह हो रहा है कि सामाजिक और पारिवारिक जीवन समाप्त हो रहा है और मनुष्य एक पशु के समान स्वयं को अपनी उदर-पूर्ति तथा भोग-विलास तक ही संकुचित रखने लगा है।

यह है विकार, जो मनुष्य में उत्पन्न हो रहा है।

—गुरुदत्त

एक

मास की पहली तारीख थी। शनिवार का दिन था और समय लगभग चार बजे सायंकाल। एक स्त्री गर्भभार से लदी हुई दिल्ली परिवहन की २६ नम्बर बस से वैस्ट पटेलनगर के स्टैंड पर उतरी। उसने एक हाथ में एक पुस्तक, दो कापियाँ और पैन्सिल पकड़ी हुई थीं। दूसरे हाथ में जनाना छाता और पर्स था। बस से उतर, धीरे-धीरे चलती हुई वह ब्लाक नम्बर ६३ में एक मकान के सम्मुख आ खड़ी हुई। बस स्टैंड से यह मकान लगभग एक फर्लांग के अन्तर पर था और इसी में वह हाँफ गई थी। अभी तो उसे ऊपर की मंज़िल पर भी चढ़ना था। इस कारण सीढ़ियों के सामने, छाता बन्द कर उसका आश्रय लेकर वह खड़ी हो गई। लगभग दो मिनट में वह श्वास स्थिर कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। छाते का आश्रय लेती हुई, ऊपर चढ़कर वह पहली मंज़िल पर पहुँच, एक कमरे के द्वार के बाहर जा खड़ी हुई। कमरे को ताला लगा था। उसने छाता तथा पुस्तक-कापियाँ बगल में दबाईं और अपने पर्स से चाबियों का गुच्छा निकालकर ताला खोला।

द्वार खोल भीतर जा, अपने हाथ का सामान एक तिपाई पर फेंक, वह धम्म-से सोफे पर बैठ गई। यह कमरा ड्राइंग-रूम की भाँति सजा हुआ था। सोफ़ा-सेट, दरी, कालीन, सेण्टर टेबल और उस पर एक फूलदान, जिसमें कागज़के बने फूलों का गुलदस्ता, दीवार पर दो चित्र—एक ताजमहल का और दूसरा पहाड़ी का कोई दृश्य—इस प्रकार कमरा सजाया गया था।

वह स्त्री सोफ़े पर आराम से बैठी सुख अनुभव कर रही थी। आँखें मूँद अब वह भविष्य के विषय में विचार करने लगी। भविष्य के विचार कुछ अधिक सुखकारक नहीं थे।

वह सातवें मास में जा रही थी। दो महीने के उपरान्त उसका प्रसव-काल था। वह उस समय का चिन्तन कर रही थी। उस समय उसको किसी

सम्बन्धी स्त्री की सहायता की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। सम्बन्धी तो बहुत थे परन्तु पिछले दो वर्ष के विवाहित जीवन में उसने कभी किसी से मेल-जोल बनाए रखने की चिन्ता नहीं की थी। उसने कभी किसी के घर किसी की सहायतार्थ जाने का कष्ट नहीं किया था। वह कर भी नहीं सकती थी। विवाह से पूर्व ही वह म्युनिसिपल गर्ल्ज़ हायर सेकेण्डरी स्कूल में अध्यापन-कार्य करने लगी थी। जब कभी कोई सम्बन्धी बीमार पड़ा तो वह उसके लिए स्कूल से छुट्टी लेकर, उसकी सहायता के लिए जा नहीं सकी थी। सम्बन्धी बीमार भी तो तभी होते थे, जब उसको स्कूल में काम बहुत अधिक होता था। कभी परीक्षाएँ अथवा टैस्ट चल रहे होते थे और कभी स्कूल में इन्स्पेक्टर आदि अधिकारियों को आना होता था।

स्कूल में अवकाश के दिन भी आते थे, परन्तु प्रायः उन दिनों कोई सम्बन्धी बीमार नहीं पड़ते थे, क्योंकि मौसम स्वास्थ्यप्रद होता था। ग्रीष्म-अवकाश में तो दिल्ली तप रही होती थी और वह तथा उसका पति किसी पहाड़ी स्थान पर चले जाते थे। उसका पति अपने अफ़सर की मिन्नत-खुशामद कर उन्हीं दिनों अपनी छुट्टियों का प्रबन्ध कर लेता था।

इस प्रकार वह स्त्री अपना प्रसव-काल समीप आते देख, चिन्ता अनुभव कर रही थी। विचार करने पर भी कोई मार्ग न पा, वह आँखें मूँदे पड़ी हुई थी।

उसको आए आधे घण्टे से ऊपर हो चुका था कि सीढ़ियों पर किसी पुरुष के चढ़ने की ध्वनि सुनाई पड़ी। उसने अपनी आँखें खोलीं, परन्तु सीधी होकर बैठने को उसका चित्त नहीं किया। वह पुरुष, जो एक युवक था, मुस्कराता हुआ कमरे का पर्दा हटाकर भीतर आया और अपनी पत्नी को इस प्रकार सोफे की पीठ से ढासना लगाए बैठे देख पूछने लगा, "कुन्तल ! इस प्रकार क्यों पड़ी हो ?"

"आज चाय तक बनाने की हिम्मत नहीं रही है। बहुत थकी-थकी अनुभव कर रही हूँ।"

"तो ऐसा करो, कल से छुट्टी ले लो।"

"छुट्टी ? अभी तो ढाई महीने पड़े हैं, तेरह दिन प्रसव के और फिर कम-से-कम एक मास उसके उपरान्त। इस प्रकार चार मास की छुट्टी

कौन देगा ? सब मिल-मिलाकर प्रसव के लिए दो मास की ही छुट्टी मिल सकती है।"

"तो फिर क्या होगा ? एक-दो मास की बिना वेतन के ले लेना।"

"ले तो लूँ, परन्तु तीन सौ रुपए की हानि होगी और फिर कोई दूसरी अध्यापिका मेरे स्थान पर अस्थाई रूप से रखी जाएगी, जो दिल लगाकर काम नहीं कर सकेगी। परिणाम यह होगा कि लड़कियों का रिजल्ट खराब हो जाएगा और मेरी बदनामी होगी। कदाचित् मेरी उन्नति रुक जाए।"

"क्या होगा, क्या नहीं होगा, इस समय यह विचारणीय नहीं है। इस समय तो विचारणीय यह है कि जान रहेगी तो जहान रहेगा। कहीं कुछ गड़बड़ हो गई तो लड़कियों को पढ़ाकर क्या करोगी ?"

"क्या गड़बड़ हो सकती है ?"

"बीमार पड़ सकती हो, और स्कूल सदा के लिए छोड़ना पड़ सकता है।"

"अर्थात् मैं मर सकती हूँ।" इतना कहते-कहते कुन्तल काँप उठी।

युवक ने दफ़्तर के कपड़े उतारकर कुरता-पाजामा पहन लिया था। वह कुन्तल के समीप एक कुरसी पर बैठते हुए कहने लगा, "मर जाने की कोई बात तो मैंने कही नहीं। प्रसव में तनिक असावधानी हो जाने से रोग तो मोल लिया ही जा सकता है।"

"परन्तु देखिए न, वेतन के बिना निर्वाह कैसे हो सकेगा ? डेढ़ सौ रुपये मुझे मिलते हैं और सवा दो सौ आप लाते हैं। पौने चार सौ में कठिनाई से निर्वाह होता है। इसमें डेढ़ सौ कम हो गए और वह भी दो महीने तक, तब तो ऋण ही लेना पड़ जाएगा। मैं तो यह विचार कर रही थी कि बिना किसी सम्बन्धी स्त्री को बुलाए काम कैसे चल सकेगा।"

"मैं तो लेडी हार्डिग अस्पताल में तुम्हारा प्रबन्ध करा रहा हूँ।"

"वहाँ तो तीन-चार दिन से अधिक नहीं रखेंगे। इतने कम समय के पश्चात् कोई भी प्रसूता काम करने योग्य नहीं हो पाती। इसी कारण तो प्रसव के बाद एक मास की छुट्टी मिल जाती है। उस काल के लिए और उससे कम-से-कम पन्द्रह दिन पहले ही काम नहीं हो सकेगा। इस प्रकार दो मास के लिए किसी सहायक की आवश्यकता पड़ेगी। नीचे की मंजिल वालों

ने तो एक नर्स रखी थी। वह दो महीने रही थी और दस रुपये प्रतिदिन के हिसाब से छः सौ रुपये नक़द लेकर गई थी।"

युवक ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा, "इतना तो हम व्यय नहीं कर सकते। नीचे वालों की बात दूसरी है। वह साढ़े सात सौ वेतन पाता है। इसके अलावा भी इनकी अच्छी-खासी सम्पत्ति है।"

"तभी तो कहती थी कि किसी सम्बन्धी से बनाकर रखना चाहिए।"

"तो मैंने मना कब किया था !"

"मना की बात नहीं। किसी के घर जाओ तो समय बेकार जाता है और फिर व्यर्थ का व्यय होता है। हमारे पास न तो समय है और न ही धन।"

"मुझको एक उपाय सूझा है। हमारी रिश्ते में एक चाची 'टोबा टेकसिंह' में रहती है। वह विधवा है और उसके कोई सन्तान भी नहीं है। बचपन में उसने मुझको खिलाया है। मैं उसको लिख देता हूँ कि दो-तीन महीने के लिए आ जाए। यदि आ गई तो काम बन जाएगा। उसको जाते समय विदाई देनी पड़ेगी, परन्तु तुम्हें आराम भी बहुत मिलेगा।"

"ठीक है, लिख दीजिए। थोड़ा-बहुत जो देना होगा, दे देंगे। परन्तु तब तक के लिए भी खाना आदि आपको ही बनाना पड़ेगा। मुझसे तो अब अधिक हिला-डुला नहीं जाता।"

"यही तो मुसीबत है। मैं विचार कर रहा था कि पड़ोस के होटल वाले से तय कर लूँ।"

"कर लीजिए।"

"तुमको वेतन मिला है ?"

"हाँ, पर्स में रखा है।"

पति ने उठकर पत्नी का पर्स पकड़ा और उसको खोलकर नोटों का बण्डल बाहर निकाल लिया। उसने गिने तो दस-दस के चौदह नोट थे। कुन्तल ने कह दिया, "एक सौ चालीस हैं। दस रुपये टीचर्स क्लब का वार्षिक चन्दा दिया है।"

अब पति महोदय ने अपने कोट की जेब में से अपना पर्स निकाला और उससे नोट निकालते हुए बोला, "दो सौ हैं। पच्चीस रुपये कैण्टीन वाले का

बिल दे दिया है।"

पति-पत्नी मिलकर हिसाब बनाने लगे कि किस-किसका कितना देना है। पति ने मेज़ की दराज़ में से लेनदारों के बिल निकाले और एक-एक कर गिनने लगा, "धोबी बीस रुपये, राशन नब्बे रुपये, दूध तीस रुपये, सब्ज़ी वाले के पन्द्रह रुपये, कपड़े वाले के तीस रुपये, दरजी बीस रुपये, बरतन मलने वाली के पन्द्रह रुपये, मकान-किराया अस्सी रुपये, बिजली-पानी का बिल पन्द्रह रुपये।"

पत्नी गिनती जाती थी। गिनकर उसने बता दिया, "तीन सौ पन्द्रह। शेष बचे पच्चीस रुपये। पन्द्रह आप रख लीजिए और दस मुझे दे दीजिए।"

पति इस स्थिति पर चिन्ता में मुख देखता रह गया। कुछ सोचकर उसने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "चलो, कुछ बैंक से तो नहीं निकालना पड़ा, न ही किसी से ऋण लेना पड़ा है।"

"चाची को पत्र लिख रहे हैं न ?

"जैसे कहो।"

"लिख दीजिए। उसे किराया मनीआर्डर से भेजिएगा तो अवश्य आ जाएगी।"

"पहले लिखकर देखता हूँ। यदि उसने आने का खर्च माँगा तो भेज दूँगा।"

इस प्रकार विचार कर पति उठा और मिट्टी के तेल का स्टोव जलाकर चाय बनाने लगा।

कुलवन्तराय लाला बरकतराय का पाँचवाँ पुत्र था। वे सब, चार बहनें और पाँच भाई थे। बरकतराय स्वयं कपड़े की दलाली करता था। इसमें उसको तीन-चार सौ रुपये की आय हो जाती थी। इसी आय में से उसने अपने नौ बच्चों का पालन-पोषण किया था, उनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध कर उनके विवाह किये थे। चारों बहनें दुकानदारों के घर ब्याही गई थीं। लड़कों में सबसे बड़ा भगतराम अब पिता का काम करने लगा था। तीन लड़कों ने मिलकर विदेशों से माल मँगवाने की एजेन्सी खोल ली थी। इन तीन भाइयों में सबसे बड़ा जुगलकिशोर अनपढ़ था। दूसरा

रामस्वरूप दसवीं तक पढ़ा था और तीसरा मोहनदास बी० ए० पास था। कम्पनी की योजना जुगलकिशोर की थी और भाग-दौड़ रामस्वरूप करता था। लिखा-पढ़ी, हिसाब-किताब तथा अफ़सरों से मिलना-जुलना, यह काम मोहन का था। तीनों का विवाह एक ही घर में तीन सगी बहनों से हुआ था। पति-पत्नियाँ परस्पर प्रेम से रहते थे।

कुलवन्त ने एम० ए० किया था। पास करते ही उसको कॉलटैक्स कम्पनी में नौकरी मिल गई थी। नौकरी लगने से पहले जुगलकिशोर ने उसको कहा था, "कुलवन्त ! तुम भी हमारी कम्पनी में काम करना शुरू कर दो।"

"नहीं भैया ! मैं तो नौकरी करूँगा।"

"क्यों ?"

"भैया ! मुझे व्यापार से घृणा है। दिन-रात की खचखच। इससे मिलो, उससे मिलो। कभी लाभ है तो कभी घाटा है। नौकरी में जीवन स्थिर रहता है। नियत तिथि को वेतन मिल जाता है। कोई मरे, कोई जिए, मेरा वेतन पक्का है। मुझे यह पसन्द है।"

कुलवन्त का पिता तब तक जीवित था। जिस कठिनाई से उसने अपने बच्चों का पालन-पोषण किया था, वह स्मरण करता था, तो परमात्मा की अपार कृपा पर, पुलकित मन, नत-मस्तक हो, आँसू बहाया करता था। जब कुलवन्त का एम० ए० का परीक्षा-फल निकला और कुलवन्त ने उसे समाचार दिया था कि वह उत्तीर्ण हो गया है, तब भी उसके अश्रु बह निकले थे। ये अश्रु हृदय की अपार प्रसन्नता के सूचक थे। उसने कुलवन्त को कहा था, "कुलवन्त ! अपने जीवन में ही अपने सभी बच्चों को शिक्षा समाप्त करते देख, आज मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। देखो, मैंने जुगल से कहा है और उसने तुम्हें अपनी कम्पनी में सम्मिलित करना स्वीकार भी कर लिया है।"

"परन्तु पिताजी ! उस कम्पनी में पहले ही तीन पत्तीदार हैं। तीनों का अच्छा-खासा बड़ा परिवार है। उस कम्पनी पर पहले ही इतना अधिक बोझ है कि बड़ी कठिनाई से उनका निर्वाह होता है।"

"परन्तु बेटा ! मैंने तो सुना है कि पिछले वर्ष उनको दस हज़ार का लाभ हुआ था। इस वर्ष और भी अधिक होने की आशा है।"

"पिताजी ! दस हज़ार रुपया तीन पत्तीदारों में तो कुछ भी नहीं।"

"परन्तु कुलवन्त ! व्यापार बढ़ रहा है। इस वर्ष उनको अधिक लाभ होने की आशा है।"

"परन्तु लाभ की अपेक्षा घाटा भी तो हो सकता है। मैं घाटे से डरता हूँ।"

"तो क्या करोगे ?"

"मैंने कई स्थानों पर नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र दिया हुआ है। मुझे आशा है, कहीं-न-कहीं अवश्य मिल जाएगी।"

"तो ठीक है। जिस दिन तुम पहला वेतन लाओगे, तुम्हारे विवाह का प्रबन्ध कर दूँगा। कई स्थानों से सन्देश आये हुए हैं।"

"पिताजी !" कुलवन्त ने सिर झुकाकर कहा, "इस विषय में आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए, मैंने उसका प्रबन्ध कर लिया है।"

"ओह ! परन्तु बेटा मैंने लाला सन्तराम को वचन दिया हुआ है। वह कई बार मिल चुका है। मैंने उसे कहा था कि तुम्हारा काम बनते ही विवाह पक्का कर दूँगा।"

"नहीं पिताजी ! मैं वहाँ विवाह नहीं करूँगा। मैंने सन्तरामजी की लड़की देखी है। मुझे वह पसन्द नहीं है।"

"उसमें क्या दोष देखा है तुमने ?"

"पिताजी ! वह कितनी पढ़ी है ?"

"मैंने पूछा नहीं। मेरा अनुमान है कि सात-आठ कक्षा तो पास होगी ही। लड़की देखने में स्वस्थ, सुन्दर और सुशील प्रतीत होती है। तुम्हारी भाभियों ने भी उसको पसन्द किया हुआ है।"

"परन्तु पिताजी ! मैंने उसको पसन्द नहीं किया। मैंने अपने लिए पत्नी ढूँढ रखी है। वह बी० ए०, बी० टी० है। एक स्कूल में पढ़ाती है। लगभग डेढ़ सौ रुपये मासिक वेतन मिलता है। हमारा परस्पर निर्णय हो चुका है कि मेरी नौकरी लगते ही हमारा विवाह होगा।"

बरकतराय यह सुनकर चुप हो गया। कुछ देर तक विचार कर उसने पूछा, "कौन है वह ?"

"एक लड़की है।"

"वह तो होगी ही। तुम किसी लड़के से विवाह थोड़े ही करोगे! मैं पूछता हूँ कि किसकी लड़की है? कहाँ रहती है? जात-बिरादरी क्या है? उसके माता-पिता कहाँ के रहने वाले हैं?"

"यह सब मैंने पूछा नहीं, पिताजी! मुझे इन बातों में रुचि भी नहीं है। लड़की अच्छी-खासी सुन्दर है। डेढ़ सौ रुपये कमाती है। मैं समझता हूँ, इतना पर्याप्त है।"

पिता को कुलवन्त की यह बात पसन्द नहीं थी। अतः वह चिन्तित हो उठा। फिर भी वह कुछ नहीं कर सकता था। अपने पिता को चुप देख कुलवन्त ने कहा, "देखिए पिताजी! आपने मुझको इतना पढ़ाया है। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। फिर भी मैं इतना बता दूँ कि सूखी रोटी खाते-खाते मेरा जी ऊब गया है। आपने अपने आठ बच्चों के विवाह किये हैं और उन पर अपने खून-पसीने की कमाई व्यर्थ की है। मुझे यह पसन्द नहीं। मैंने अपनी होने वाली पत्नी से बात की है और हमारा निर्णय है कि हम अपने विवाह पर दस-पन्द्रह रुपये से अधिक व्यय नहीं करेंगे। आप अपने गाढ़े पसीने की कमाई अपनी वृद्धावस्था के लिए सुरक्षित रखिए।"

बरकतराय ने मुस्कराते हुए कहा, "मेरी कमाई तो तुम लोग हो। भला, जिसके पाँच-पाँच कमाते-खाते बेटे हों, उसको बुढ़ापे की चिन्ता क्यों होगी? एक-एक टुकड़ा भी तुम मेरी ओर फेंक दोगे तो मेरा पेट भर जाएगा। मकान अपना है। मुझे किसी की एक पाई नहीं देनी। बताओ चिन्ता किस बात की करूँ?"

बरकतराय ने कई बार अपने बच्चों के सम्मुख यह स्पष्ट किया था कि उसकी सफलता का रहस्य उसका व्यय पर नियन्त्रण रखना है; आय में से कुछ-न-कुछ बचाकर उसे लाभदायक कार्यों पर लगाना है। कुलवन्त यह देखता था कि उसका पिता सप्ताह में एक बार ही धुले हुए वस्त्र पहनता था, घर का सारा काम स्वयं करता था। पहले उसकी माँ सारा काम करती थी और माँ के देहान्त के उपरान्त वह स्वयं करने लगा था।

उसके भाई तथा बहनें भी उसके पिता की सहायता किया करते थे। बहनें ससुराल गईं तो भाभियाँ आ गईं। इस प्रकार घर में काम करने के लिए अथवा चौका-बासन के लिए कभी नौकर नहीं रखा गया था। वह सब

उसे पसन्द नहीं था। कॉलेज में प्रवेश लेते ही कुलवन्त ट्यूशन करने लगा था और इस आय को वह अपने वस्त्रों पर, सिनेमा इत्यादि देखने में तथा चाय-पानी में व्यय करने लगा था।

पिता ने यह जानकर भी कि उसका छोटा लड़का चालीस-पचास रुपये मासिक कमा लेता है, कभी उससे कुछ माँगा नहीं था। उसने कभी उससे पूछताछ भी नहीं की थी। परन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि कुलवन्त स्वयं को अपने भाई-बहनों से पृथक् समझने लगा था। जहाँ दूसरे भाई, पिता से पृथक् रहते हुए भी, कुछ-न-कुछ उसकी सहायता किया करते थे, वहाँ कुलवन्त अपनी आय में से अपना ही व्यय चलाता था। पिता भी यही समझता था कि इस महँगाई के काल में, जबकि कॉलेज का व्यय भी काफी होता जा रहा था, उसका लड़का अपना ऊपर का व्यय पूर्ण कर लेता है, यही पर्याप्त है।

कुलवन्त की बड़ी बहन सौदामिनी, कुलवन्त के पास होने का समाचार सुन, पिता को बधाई देने आई तो पिता को लम्बा मुख किये बैठे देख चिन्तित हो पूछने लगी, "कुलवन्त, क्या बात है ? पास हो तो गये हो न ?"

"हाँ दीदी !"

"तो फिर पिताजी गम्भीर क्यों बैठे हैं ? मैं तो बधाई देने आई थी। कुलवन्त ! तुम्हारे भानजे भी अपने मामा से मिठाई खाने के लिए आने वाले थे। मैंने ही उन्हें कहा था कि एक-एक करके आना। इकट्ठे आये तो हिस्से में कम आएगी।"

"दीदी ! नौकरी लगते ही खिलाऊँगा।"

"नौकरी लगते···!" कहते-कहते वह रुक गई। फिर कुछ विचार कर बोली, "नौकरी करोगे कुलवन्त ! यह तो हमारे परिवार की रीत नहीं।"

"मैं यह और अन्य भी सारी रीतियाँ तोड़ने वाला हूँ। मुझको व्यापार पसन्द नहीं है।"

"व्यापार पसन्द नहीं तो कोई कारखाना खोल लो। नौकरी तो कुलवन्त, हमारे रक्त में नहीं है।"

"दीदी ! यह सब व्यर्थ की बातें हैं। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि रक्त के परमाणुओं का व्यापार अथवा नौकरी इत्यादि से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"हाँ !" पिता ने बात को पूरा करने के लिए कह दिया, "घर के रीति-रिवाज मानने का भी इससे कोई सम्वन्ध दिखाई नहीं दिया है। सौदामिनी ! कुलवन्त ने एक मास्टरायिन से विवाह करने का निश्चय किया है।"

"यह तो और भी अच्छा है, पिताजी ! भाभी परिवार के बच्चों को पढ़ा दिया करेगी। ठीक है न, कुलवन्त !"

कुलवन्त बहन को इतनी सुगमता से मानते देख चकित रह गया। परन्तु बच्चों को पढ़ाने की बात सुन परेशानी अनुभव करने लगा। घर के बच्चों को पढ़ाने का अर्थ था बिना फीस लिये पढ़ाई। इसे वह उचित नहीं समझता था।

बरकतराय ने उठकर अपने सलूके की जेब में से पाँच रुपये का नोट निकालकर सौदामिनी को देते हुए कहा, "यह बच्चों की मिठाई के लिए है। उनको खिला देना।"

कुलवन्त के भाई-बहन उसको एक सर्वथा अपरिचित परिवार की लड़की से विवाह करते देख प्रसन्न नहीं हुए। फिर भी जब कुलवन्त का निश्चय सुना तो चुप रहे और घर में आने वाली बहू के स्वागत की तैयारी में लग गए।

कुलवन्त को अपने परिवार वालों से यह भी गिला था कि वे सब-के-सब दुकानदार होने से, किसी भी सरकारी दफ़्तर में सिफ़ारिश आदि नहीं कर सकते थे। उसकी हार्दिक आकांक्षा थी कि किसी भी सरकारी दफ़्तर में उसे नौकरी मिल जाय; परन्तु सिफ़ारिश के अभाव में वह इसे असम्भव समझने लगा और विवश हो उसने कॉलटैक्स कम्पनी में नौकरी स्वीकार कर ली।

जिस दिन उसे नौकरी का पत्र मिला, उसी सांयकाल वह म्युनिसिपल गर्ल्ज़ स्कूल के फाटक पर जा पहुँचा और अपनी भावी पत्नी की प्रतीक्षा करने लगा। स्कूल में छुट्टी की घंटी बजी। लड़कियाँ निकलनी आरम्भ हुईं और फिर अध्यापिकाएँ। कुन्तल जब बाहर निकली तो कुलवन्त को खड़े देख, मुस्कराकर, अपनी साथियों से विदा ले वहाँ जा पहुँची जहाँ वह खड़ा था।

कुलवन्त का मुख आज खिला हुआ था। इससे कुन्तल समझ गई कि कोई शुभ समाचार है। उसके पास आते ही कुलवन्त ने सूचना दे दी,

"कुन्तल ! मेरी नौकरी लग गई है। कॉलटैक्स से नियुक्ति-पत्र आया है। दो सौ रुपये मासिक पर।"

"ठीक है। स्वीकार कर लीजिए। दो सौ आपके और डेढ़ सौ मेरे, साढ़े तीन सौ में बड़े आनन्द से निर्वाह हो जाएगा। और फिर समय पर उन्नति भी हो जाएगी।"

"कल उपस्थित होने के लिए आज्ञा मिली है। अब बताओ, दूसरा काम अर्थात् विवाह कैसे होगा ?"

"आप बताइए। विवाह किस रीति से होगा ?"

"जिस रीति से सब हिन्दुओं का होता है।"

"ओह ! तो आप हिन्दू हैं ?"

"तो तुम्हें इसमें सन्देह है क्या ? हिन्दुस्तान में रहने वाले हिन्दू ही तो हुए। हमारे देश का नाम हिन्दुस्तान है।"

"हाँ, कभी था। स्वराज्य मिलने से पहले। अब तो हमारे संविधान ने देश का नाम भारत रखा है और इसमें रहने वाले हम सब भारतीय हैं। कम-से-कम मैं तो हिन्दू नहीं हूँ। हमारे स्कूल में एक अध्यापिका है निर्मला। वह अपने-आपको हिन्दू कहती है। सवेरे चार बजे उठती है, स्नानादि से निवृत्त हो रामायण का पाठ करती है और पश्चात् अपने मकान के द्वार पर आकर खड़ी हो जाती है। जब तक किसी भीख माँगने वाले को भीख नहीं दे देती, स्वयं कुछ नहीं खाती। गले में रुद्राक्ष की माला धारण करती है। उसे देख मेरा तो कलेजा मुख को आता है।"

"कुछ भी हो, कुन्तल डीयर ! विवाह तो होना ही है। मुझको हिन्दू-विधि से विवाह सबसे सुगम, सस्ता और सरल प्रतीत हुआ है।"

"मुझको तो कुछ भी आपत्ति नहीं। जिस दिन आप पहला वेतन लेकर आएँगे, उसी दिन हमारा विवाह होगा।"

"तो इसका अर्थ है, एक मास की तपस्या और।"

"विवाह होते ही खर्चा भी तो होगा। मैं अपनी सखियों को दावत दूँगी और आप भी अपने मित्रों तथा भाई-बहनों का मुख मीठा कराएँगे।"

"विवाह करते ही हमको एक पृथक् मकान लेना होगा। उसमें फ़र्नीचर और सुख-सुविधा का सामान जुटाना होगा। उसमें मैं अपने धन का सदुप-

योग करूँगी।"

"तो कोई मकान देखा है ?"

"हाँ, ईस्ट पटेलनगर में एक फ्लैट मिल रहा है। दो कमरे, टट्टी, गुसलखाना और रसोई, किराया अस्सी रुपये है। मैं उसको ले लेती हूँ और उसमें फ़र्नीचर का प्रबन्ध करवा देती हूँ। इसमें भी लगभग एक मास का समय लग जाएगा।"

"दीदी ने पिताजी के मकान में एक कमरा हमारे लिए सजाना आरम्भ कर दिया है।"

"कहाँ ? कूँचा पातीराम में। वहाँ मैं नहीं रह सकती।"

"ठीक है, कुन्तल ! परन्तु यह तो सोचो कि अस्सी रुपये महीने की बचत हो जाएगी।"

"ठीक है, परन्तु मुझसे वहाँ नहीं रहा जाएगा। मेरा तो जी घुटने लगेगा। हम पढ़ने-लिखने वाले व्यक्ति इस प्रकार के गंदे वातावरण में नहीं रह सकते।"

कुलवन्त कुछ नहीं बोला। इसे कुन्तल ने स्वीकृति समझा। दोनों चलते-चलते बातचीत कर रहे थे। इस समय वे 'अप्सरा' रेस्टोराँ के सम्मुख जा पहुँचे। दोनों भीतर प्रवेश कर गए।

इस वार्तालाप के एक मास के पश्चात् कुलवन्त कुन्तल को लेकर अपने पिता तथा भाई-बहनों को निमन्त्रण देने जा पहुँचा। निमन्त्रण-पत्र छपवाये नहीं गए थे। मित्रों को हाथ से लिखकर भेज दिये गए थे और अपने सम्बन्धियों को मौखिक निमन्त्रण देने जा पहुँचे। शनिवार का दिन था। उस दिन दोनों ने छुट्टी ले रखी थी। अगले दिन रविवार को विवाह होने वाला था।

बरकतराय ने कुलवन्त को एक लड़की के साथ आते देखा तो समझ गया कि यही लड़की होगी जिसको कुलवन्त ने पसन्द किया है। वह गम्भीर मुद्रा में बैठा हुआ उनका मुख देखने लगा।

कुलवन्त ने कुन्तल का परिचय दे दिया। उसने कहा, "पिताजी ! यह हैं कुन्तल कुमारी, जिनसे कल रविवार के दिन सायं पाँच बजे, आर्यसमाज मन्दिर, करौलबाग में मेरा विवाह होना निश्चित हुआ है। आप आइये और

हमें आशीर्वाद दीजिएगा।"

बरकतराय ने एक बार अच्छी तरह कुन्तल को सिर से पाँव तक देखा और फिर कहा, "कुलवन्त! जब तुमने इसको पसन्द किया है तो ठीक है। हमने तो लाला सन्तराम की लड़की को ही पसन्द किया था। खैर, अब तो उसका विवाह किसी अन्य स्थान पर निश्चित हो गया है। मेरे कहने पर ही उसके पिता इतने दिन तक रुके रहे थे। जब तुमने जवाब दे दिया तो उन्होंने उसकी सगाई अन्यत्र कर दी है।

"चलो, जो हुआ सो हुआ। मैं कल आऊँगा और तुम दोनों को आशीर्वाद दूँगा। देखो बहू!" बरकतराय ने कुन्तल की ओर देखते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे लिए यह साथ वाला कमरा ठीक किया है। आओ तुमको दिखा दूँ।"

बरकतराय उठा और साथ वाला कमरा खोलने लगा। कमरे में बिलकुल अँधेरा था, परन्तु जब बरकतराय ने खिड़की खोली तो भीतर प्रकाश हो गया।

एक छोटा-सा कमरा था। उसमें एक पलँग लगा था। फ़र्श पर दरी बिछी थी और एक ओर एक मेज़, दो कुर्सियाँ दीवार के साथ लगी थीं। एक अलमारी भी उस कमरे में थी।

पटेलनगर वाले मकान से इस कमरे की तुलना नहीं हो सकती थी। अत: कुन्तल ने नाक चढ़ाकर कहा, "हमने ईस्ट पटेलनगर में एक फ्लैट ले लिया है। विवाह के पश्चात् हम सीधे वहीं जाएँगे।"

"ओह! कितने भाड़े पर लिया है?"

"अस्सी रुपये पर।"

"अस्सी रुपये? बेटी! चादर देखकर ही पाँव पसारना चाहिए।"

"पिताजी! हम कमाएँगे और उसका भोग करेंगे।"

"ठीक है, परन्तु बेटी! भोग करने का ढंग होता है। देखो, जब मेरा विवाह हुआ था, मेरी आय लगभग डेढ़-दो रुपये नित्य थी। अब भी मेरी आय दस-ग्यारह रुपये से अधिक नहीं है। फिर भी इस आय से मैंने नौ बच्चों का पालन-पोषण कर उनका विवाह किया है। प्रत्येक के विवाह पर दिल खोलकर व्यय किया है। अभी भी कुलवन्त के विवाह पर व्यय करने के लिए मेरे पास पाँच सहस्र रुपया जमा है। वह तो मैं व्यय करूँगा ही।

इसके विवाह पर इसके भाई-बहनों को कुछ-न-कुछ मिलना ही चाहिए, वह मैं दूँगा। फिर यह मकान भी मैंने अपनी कमाई से बनवाया है। यह सब-कुछ मैं इसी कारण कर सका हूँ कि मैंने अपने पाँव फैलाते समय चादर की लम्बाई-चौड़ाई का ध्यान रखा है और सदा चादर का एक अंश पाँव के नीचे दबाकर रखा है।"

"पिताजी! हमने सब गिनती-मिनती की है। हमारा विचार है कि हम आनन्द से जीवन-निर्वाह कर सकेंगे।"

पिता ने जितनी बात की थीं, उससे बहुत कम कुलवन्त के भाई-बहनों और भावजों ने की। केवल सौदामिनी ने कुन्तल की आँखों में देखते हुए कहा, "देखो भाभी! कुलवन्त सबसे छोटा होने के कारण हम सबको अत्यन्त प्यारा रहा है। यह अब तुम्हारे हाथ में है। इस अमानत को सावधानी से रखना।"

इसके उत्तर में कुन्तल ने केवल मुस्करा-भर दिया।

अगले दिन निश्चित समय पर सब मित्र-सम्बन्धी तथा कुन्तल की सखियाँ आर्यसमाज मन्दिर में एकत्रित हो गए। ठीक पाँच बजे सायं विवाह-संस्कार आरम्भ हो गया।

बरकतराय ने अपने लड़के-लड़कियों को कह दिया था कि विवाह के उपरान्त यहाँ से वे कूँचा पातीराम वाले मकान में चलेंगे और वहीं विवाह का शकुन आदि होगा।

सौदामिनी ने पूछा था, "पिताजी! क्या वर-वधू भी वहाँ चलेंगे?"

"हाँ, भोजन वहीं होगा। तदनन्तर वे पटेलनगर वाले फ्लैट में सोने के लिए जाएँगे।"

यह सब-कुछ नवीन था। फिर भी बरकतराय, उसके लड़के तथा लड़कियाँ इस नवीन परिस्थिति के अनुकूल अपने को बना रहे थे। इस सब कार्यक्रम में यदि किसी को असुविधा हो रही थी तो वह कुन्तल को थी।

विवाह सम्पन्न हुआ, पण्डित को दक्षिणा दी गई और उपस्थित अभ्यागतों में मिठाई बाँटी गई। मित्रादि विदा हुए तो बरकतराय ने ताँगे और टैक्सियाँ मँगवाईं और सबको कूँचा पातीराम चलते के लिए कह दिया।

जब कुन्तल को टैक्सी में बैठने के लिए कहा गया तो उसने कह दिया,

"हमारा कार्यक्रम तो यहाँ से पटेलनगर जाने का है।"

"बेटी ! तुम चलो तो सही। केवल एक घण्टे में तुम वहाँ से निवृत्त हो जाओगी।"

कुन्तल चलने के लिए तैयार हो गई, परन्तु उसके चेहरे पर उठे भावों से स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि उसे यह बिलकुल पसन्द नहीं है।

घर के सब प्राणी कुन्तल का फूला हुआ मुख देख रहे थे और अपने मन में अस्वाभाविकता अनुभव कर रहे थे। मार्ग में किसी ने भी उससे कोई बात नहीं की।

घर पहुँच बरकतराय ने अपने सब बच्चों को विदाई दी। प्रत्येक लड़के को एक सौ एक रुपया वस्त्रों के लिए तथा एक-एक मिठाई का थाल; प्रत्येक बहू को इक्यावन रुपये तथा साड़ी-जम्फर; और प्रत्येक पोते-पोती को इक्यावन-इक्यावन रुपये, प्रत्येक लड़की को इक्यावन-इक्यावन रुपये, साड़ी-जम्फर तथा उनके बच्चों को इक्यावन-इक्यावन रुपये।

सबको देने के उपरान्त उसने एक हजार रुपया बहू के हाथ में देकर कहा, "बहू ! विचार कर जीवन चलाना। ईश्वर तुम्हें सुखी रखे।"

रुपये देख कुन्तल का मुख खिल उठा। फिर भी उसने कुछ कहा नहीं। वह मिठाई का थाल तथा रुपये पकड़ उठ खड़ी हुई और चलने को तैयार हो गई।

कुलवन्त भी उठ खड़ा हुआ और सबको हाथ जोड़ विदा माँगने लगा। सब लोग यह अनुभव कर रहे थे कि वर-वधू शीघ्र अपने घर जाने के लिए उत्सुक हो रहे हैं। अब किसी ने भी उनको रोकना उचित नहीं समझा।

मार्ग में कुन्तल ने अपने पति से कहा, "आपके घर के सब प्राणी सोलहों आने भावुक प्रकृति के हैं। कोई भी समझ की बात नहीं करता। भला इतना कुछ लड़के-लड़कियों को देने की क्या आवश्यकता थी ? ऐसा प्रतीत होता है कि आपके पिताजी ने अपना सब-कुछ लुटाकर अपने पुत्रों के आश्रय अपना बुढ़ापा व्यतीत करने का निश्चय कर लिया है।"

यद्यपि कुलवन्त भी अपने पिता का पुत्र था और उनकी तथा अपने बहन-भाइयों की भावुकता को अनुभव करता था, फिर भी अपनी शिक्षा

के कारण इस पूर्ण आडम्बर को कोरी 'सुपरफ्लूइटी' मानता था। उसने कुन्तल की बात के उत्तर में कहा, "ये सब 'सैन्टिमैंटल फूल्ज़, हैं, परन्तु वे हैं। यह वस्तुस्थिति है और हमें उनको टॉलरेट करना पड़ेगा।"

"समय बहुत बदल चुका है, परन्तु हमारी हिन्दू जाति अभी भी उसी स्वप्नलोक में विचर रही है। इसके पतन का कारण भी यही है। अब देखिए न, विवाह कराने वाला पण्डित घण्टा-भर पता नहीं क्या बक-झक करता रहा। वह उस ईश्वर के गुणगान करता रहा, जिसका अस्तित्व ही नहीं। भला वह कैसे हमारे जीवन का संचालनकर्ता बन सकता है। हमारे अन्दर बुद्धि है, शिक्षा द्वारा इसका विकास कर हम जीवन को सुलभ बना रहे हैं।"

यही विलक्षणता कारण बन गई जो विवाह के छः मास के भीतर ही कुलवन्त अपने भाई-बहनों तथा भावजों से सर्वथा संबंध तोड़ बैठा और वे भी उसको ऐसे भूल गए मानो उसका कोई अस्तित्व ही न हो।

सब कार्य सफलतापूर्वक चलता रहा। कुलवन्त और कुन्तल का जीवन था—रात को देर से सोना, प्रातः देर से उठना, और फिर दफ़्तर तथा स्कूल जाने की तैयारी में लग जाना। पति-पत्नी दोनों मिलकर भोजन बनाते। सवेरे के भोजन में प्रायः उबले आलू की सब्ज़ी होती, डबल रोटी के टोस्ट, मक्खन और दूध होता। भोजन कर, तैयार हो, वे अपने-अपने काम पर चले जाते। शाम को कुन्तल लगभग आधा घण्टा पहले लौटती। आकर वह स्टोव जला, चाय का पानी रख देती और स्लाइस काटकर उन पर मक्खन लगाना आरम्भ कर देती।

कुलवन्त आता और चाय पी दोनों कभी सिनेमा, कभी भ्रमण के लिए और कभी चाँदनी चौक 'शॉपिंग' के लिए निकल जाते। रविवार के दिन पिकनिक मनाई जाती—कभी कुतुब की लाट पर, कभी ओखला, हौज़खास अथवा हुमायूँ के मकबरे पर। रात का भोजन पति-पत्नी इकट्ठे बनाते और खाकर सोने की तैयारी करते।

परिणाम यह हो रहा था कि इनको जीवन के बाहर का कुछ भी ज्ञान नहीं रहा था। समाचार-पत्र नित्य आता था, परन्तु केवल समाचारों के हैडिंग देखने के लिए या सिनेमा का विज्ञापन पढ़ने के लिए। राजनीतिक अथवा सामाजिक बातों में उनकी किंचित्‌मात्र भी रुचि नहीं थी।

इस प्रकार पलक की झपक में दो वर्ष व्यतीत हो गए। कुन्तल के गर्भ ठहरा तो इनका सुख-स्वप्न भंग हुआ। इस समय तक जीवन-यापन महँगा हो जाने के कारण, दोनों के सम्मिलित वेतन में से भी कुछ शेष बचना बन्द हो गया था।

कम्पनी के डॉक्टर और म्युनिसिपल कमेटी के डॉक्टरों की सम्मति में कुन्तल के केस में किसी प्रकार की विषमता नहीं थी। इससे दोनों निश्चिन्त थे। कुलवन्त का विचार था कि निश्चित तारीख से पन्द्रह दिन पूर्व स्कूल से छुट्टी ली जाएगी और हस्पताल में केस होगा। यह निश्चित था कि बेबी की देखभाल स्कूल की एक 'दायी', जो स्कूल में सफ़ाई आदि करती थी, स्कूल के समय करेगी और उसको बीस रुपये महीने दिये जाएँगे।

परन्तु कुन्तल को अभी सातवाँ मास ही था कि कठिनाई आरम्भ हो गई। वह इतनी दुर्बल हो गई थी कि उसके लिए आना-जाना तथा काम करना कठिन हो गया। इसी कारण उसको किसी सहायता करने वाली स्त्री की अत्यन्त आवश्यकता थी।

अपने आसपास की स्त्रियों की ओर इस निमित्त उसने देखना आरम्भ कर दिया, परन्तु उनमें से कोई भी ऐसी नहीं थी, जिसको वह कुछ कह सके। मकान के नीचे की मंजिल में मालिक-मकान रहता था। उसकी स्त्रियों से अभी तक कोई बोलचाल नहीं हुई थी। ऊपर की मंजिल में एक मद्रासी परिवार था। वह उत्तर-भारत के रहने वालों को सदैव घृणा की दृष्टि से देखता था।

उसका ध्यान अपने पति की भावजों और बहनों की ओर भी गया। परन्तु उनके प्रति उसके मन में संकोच था। विवाह के पश्चात् अब तक उन्होंने उनसे सम्पर्क नहीं रखा था। अब स्वार्थवश उनको बुलाना कैसे उचित हो सकता है? और उन्होंने भी तो पिछले दो वर्ष के काल में उससे मिलने की चेष्टा नहीं की थी। अत: उनको भी कुन्तल ने मन से निकाल दिया।

इस अवस्था में कुलवन्त को अपने परबाबा के दूसरे लड़के की पतोहू, जो इस समय 'टोबा टेकसिंह' में विधवा का जीवन व्यतीत कर रही थी, स्मरण हो आई। उसने उसको पत्र लिख दिया।

सोमा चाची को कुलवन्त का पत्र मिला तो उसने दिल्ली आने का कार्यक्रम बना लिया। उसने तार दे दिया कि वह अगले दिन सवेरे की गाड़ी से पहुँच रही है।

कुलवन्त सोमा चाची को स्टेशन पर लेने के लिए गया और टैक्सी में बिठाकर घर ले आया। उसका सामान अपने कमरे में रखवा दिया और स्वयं अपना विस्तर बाहर ड्राइंग-रूम में ले आया।

उसी रात भोजन के समय बात हो गई। कुलवन्त ने कहा, 'चाची ! अब तो तुम काफ़ी वृद्ध हो गई हो। तुम्हारे सिर के बाल बिलकुल सफेद हो गए हैं।'

चाची ने कह दिया, "हाँ बेटा ! यह आदिकाल से सबके साथ होता आया है और सबके साथ होता रहेगा। बचपन, जवानी और बुढ़ापा, ये जीवन की अवस्थाएँ हैं। ये टल नहीं सकतीं।"

कुन्तल जीवन की इस प्रक्रिया को सुन काँप उठी। सोमा चाची ने यह देखा तो हँस पड़ी। हँसकर बोली, "बहू ! डर लगता है बुढ़ापे से ! डरने से यह टाला नहीं जा सकता। हाँ, यह डर अवश्य दूर किया जा सकता है।"

"कैसे, चाची !"

"भगवान् का भजन करने से।"

"चाची ! वह मेरे वश का नहीं है।"

"क्यों ?"

"मुझको वह कहीं दिखाई नहीं देता।"

सोमा चाची ने कन्धों को उचकाकर असन्तोष प्रकट किया। तदुपरान्त उसने पूछ लिया, "मेरे जेठजी कहाँ हैं ?,'

कुलवन्त समझ नहीं सका कि वह किसके विषय में पूछ रही हैं। वह चाची का मुख देखने लगा। सोमा ने स्पष्ट कर दिया, "कुलवन्त ! मैं तुम्हारे पिताजी के विषय में पूछ रही हूँ।"

"ओह ! तो पिताजी को पूछ रही हो। वे दिल्ली में ही हैं। चाची ! मैंने यह विवाह उनकी इच्छा के विपरीत किया था, इस कारण वे तथा सभी भाई और बहनें हमसे नाराज़ हैं।"

"क्यों ? उनको बहू में क्या दोष दिखाई दिया है ?"

"केवल यही कि वह सब भाभियों से अधिक पढ़ी-लिखी है।"

सोमा चाची हँस पड़ी। हँसकर उसने कहा, "तो यह कोई दोष है?"

"हाँ, चाची! जैसे कुरूप स्त्रियों में सुन्दर होना दोष होता है।"

"बहू ने अपने पढ़े-लिखे होने का गर्व किया होगा। अनपढ़ों में अनपढ़ ही बनकर रहना चाहिए।"

दिल्ली पहुँचने पर सबसे पहली बात जो सोमा चाची ने की, वह कुन्तल को स्कूल से छुट्टी लेने को विवश करना था। उसने कुन्तल को इतना डराया कि कुन्तल को छुट्टी लेनी ही पड़ी। छुट्टी दिलवाकर उसने उसको घर पर बिठाया तथा स्वयं वह बरकतराय से मिलने जा पहुँची।

बरकतराय उस समय घर पर आराम कर रहा था जब सोमा वहाँ पहुँची। सोमा ने प्रथा के अनुसार थोड़ा-सा घूँघट निकाल लिया और अपने जेठ को पायलागूँ कर दी।

"ओह, सोमा! तुम यहाँ कैसे? और वह भी बिना सूचना दिए?"

"बात यह है कि आप लोगों ने कुलवन्त की सुध-बुध लेनी छोड़ दी है। इसीलिए मुझको इतनी दूर आना पड़ा है।"

"कुलवन्त को क्या है?" बरकतराय ने आश्चर्य से पूछा।

"कुलवन्त को तो कुछ नहीं है, हाँ उसकी बहू को कुछ है। वह इस समय आठवें मास में जा रही है।"

"यह तो होना ही था। विवाह हुआ है तो यह भी होना था। परन्तु इसके लिए तुमको तीन सौ मील की यात्रा करके आने की आवश्यकता क्यों पड़ी है? कुलवन्त के चार भाई, चार भावजें तथा चार बहनें हैं और फिर अभी मैं जीवित हूँ। उसने बताया ही नहीं कि बहू की यह हालत है और उसको किसी की सहायता की आवश्यकता है।"

"यह बहुओं का काम था कि उसकी टोह लेती रहें।"

"क्या यह कुलवन्त का काम नहीं था कि अपने भाई-भाभियों से मिलता रहे और अपने सुख-दुःख में उनको सम्मिलित करता रहे?"

"तो आप सत्य ही उससे नाराज़ हैं?"

"नाराज़गी तो सबकी है। परन्तु उसके पास इस समय न जाने का कारण उसकी अवस्था का ज्ञान न होना ही है।"

"कुलवन्त की वहू यह समझती है कि आप लोग उससे नाराज हैं। इसी कारण उसने मुझको बुलवाया है और आप लोगों को नहीं बुलाया।"

"पर सोमा! तुमने पूछा नहीं कि उसने तुमको अपने विवाह पर क्यों नहीं बुलाया?"

"वह तो जेठजी! आपसे पूछूँगी। आपको बुलाना चाहिए था।"

बरकतराय हँस पड़ा। उसने कहा, "मुझको तो वह बुलाने आया था सोमा! उसने विवाह का सारा प्रवन्ध स्वयं किया था। विवाह से एक दिन पूर्व ही मुझको विवाह पर पहुँच आशीर्वाद देने के लिए आने का निमन्त्रण दिया था। मुझको उसने यह भी नहीं कहा कि मैं अपने पुत्रों तथा बहुओं को लेकर आऊँ। विवाह का सारा व्यय भी उसने स्वयं ही किया था। फिर भी मैंने उसकी भाभियों तथा बहनों को स्वयं विदाई दी और एक सहस्र रुपया कुन्तल को भी दिया। विवाह के उपरान्त वह कभी किसी से मिलने के लिए नहीं आया और जब कभी हममें से कोई उसके घर पर उससे मिलने गया, वे घर नहीं मिले।"

"मैंने एक बात तो आते ही की है। वह यह कि उसको स्कूल से छुट्टी लेने पर विवश कर दिया है। आज वह घर बैठी है। इस अवस्था में घूमना-फिरना बड़ा विचित्र लगता है। जब मैंने उसको कहा कि तुमको ऐसे बढ़े हुए पेट के साथ बाजार में घूमते हुए लज्जा नहीं लगती तो कहने लगी कि इसमें लज्जा की क्या बात है। दिल्ली की बीस लाख की आबादी में सहस्रों स्त्रियाँ नित्य प्रसव करती हैं, लज्जा तो उस बात में हो जो दूसरों से अनोखी हो।"

"इस पर मैंने उसको डराया-धमकाया कि कहीं कुछ गड़बड़ हो गई तो जन्म-भर का रोग लग सकता है। तभी वह मानी।"

"तुमने ठीक किया है, सोमा! अच्छा, मैं आज ही जुगल की बहू को भेजूँगा। सौदामिनी भी जाएगी और फिर उसका कुछ उचित प्रवन्ध भी कर दिया जाएगा।"

"वह हस्पताल में जनने के लिए जाने वाली है।"

"यह उसके अपने विचार करने की बात है। हमसे राय पूछेगी तो हम तो यही कहेंगे कि जुगल के घर में प्रसव के लिए रहे। जुगल के तीन बच्चे हो चुके हैं, रामस्वरूप के दो हैं और मोहन का एक है। इतना अनुभव रखने

वाली स्त्रियों के पास रखने से मैं निश्चिन्त हो जाऊँगा। इन्होंने दरियागंज में एक अच्छा-खासा मकान ले लिया है। वहाँ उसको भी सुख मिलेगा।"

सोमा को केवल जेठ से मिलकर और उसको उलाहने देकर ही सन्तोष नहीं हुआ। वह बारी-बारी बरकतराय के चारों लड़कों और लड़कियों से मिली और सबको गिन-गिन कर सुना आई। फिर भी उसकी समझ में यही आया कि कुलवन्त की बहू दूसरों से भिन्न है। उससे कोई नाराज़ नहीं, वही सबसे नाराज़ है।

सायंकाल जब वह घर पहुँची तो कुलवन्त दफ़्तर से आ चुका था। आज स्कूल न जाने के कारण कुन्तल का चित्त अधिक स्थिर था, दुर्बलता भी कम थी। फिर भी कुलवन्त सोमा चाची के डरा देने से स्वयं ही चाय बना रहा था। उसने कुन्तल को कुछ काम नहीं करने दिया था। सोमा चाची आई तो उस समय कुलवन्त अपनी पत्नी के सामने मेज़ पर चाय का सामान लगा रहा था। सोमा चाची यह देख हँस पड़ी। कुलवन्त ने कह दिया, "चाची! जब तुम घर पर दिखाई नहीं दीं तो मुझे ही चाय बनानी पड़ी।"

"काम करने से कुछ हानि नहीं होगी, बहू!" सोमा ने कुन्तल के मुख पर देखते हुए कहा, "घर के भीतर तनिक हिलना-डुलना चाहिए।"

"खैर, अब तो बन ही गई है।" कुलवन्त ने कह दिया, "लो चाची! तुम भी पियो।"

सोमा चाची बैठ गई और कुन्तल से पूछने लगी, "कैसा जी है आज?"

"आज तो दुर्बलता कम लगती है।"

"ठीक है, अब तुमको कष्ट नहीं रहेगा।"

कुलवन्त प्यालों में चाय डालते हुए पूछने लगा, "चाची! कहाँ रहीं सारा दिन?"

"जेठजी के पायलागूँ करने गई थी। वहाँ से जुगल, राम और मोहन की बहुओं से मिलने चली गई।"

"तो मेरी निन्दा सुन आई हो?"

"तुम्हारी तो प्रशंसा ही सुनी है।"

"क्या प्रशंसा की बात सुनी है?"

"यही कि तुम इतने भले लड़के हो कि अपने सम्बन्धियों को कभी कष्ट नहीं देते। जुगल की बहू के पहला बच्चा होने वाला था तो छः महीने पहले ही वह अपनी माँ के घर जा बैठी थी। जुगल स्वयं उसको माँ के घर छोड़ने जा पहुँचा था।"

"तो मेरी इस बात से कौन-कौन प्रसन्न है?"

"वे सभी प्रसन्न हैं, जिनको तुमने कष्ट नहीं दिया और कष्ट देने का विचार भी नहीं रखते।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ कि मेरे उनके पास जाने से उनको कष्ट होता है।"

सोमा हँस पड़ी। वह मन में विचार कर रही थी कि यह पढ़ा-लिखा बुद्धू है। इस समय तक चाय बन गई थी। सोमा ने अपने सामने रखा प्याला उठा लिया और सुड़कियाँ लगाकर पीने लगी। कुन्तल तो पहले ही पीने लगी थी।

इस समय किसी के सीढ़ियाँ चढ़ने का शब्द हुआ, परन्तु सबने यही समझा कि कोई ऊपर वाले फ्लैट में रहने वाले मद्रासी को मिलने आया है। सबके विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब जुगल और राम की बहुएँ परदा उठा कमरे में प्रविष्ट हो गईं। कुलवन्त ने भाभियों को पहचाना तो उठकर उनका स्वागत किया। उनको बिठाया और चाय की पूछी।

जुगल की बहू राधा और राम की बहू रमणी बैठीं तो राधा ने कह दिया, "बहू! चाय पिलाने की नीयत होती तो बुलातीं। अब तो हम बिना बुलाये आये हैं। इस कारण चाय की पूछने की आवश्यकता नहीं है। हम तो स्वयं बनाकर पी लेंगी।"

सोमा हँस पड़ी। उसने हँसते हुए कहा, "कुलवन्त ने तो तीन के लिए ही बनाई थी, मैं तुम्हारे लिए बना देती हूँ।"

"नहीं, चाची! रमणी बहुत बढ़िया चाय बनाती है। उसके हाथ की बनी चाय का एक प्याला भी पीओगी तो गाँव को भूल जाओगी।"

"वह तो पहले ही भूल चुकी हूँ। हमारे गाँव में तो कुन्तल की अवस्था में कोई भी लड़की इस अवस्था से कई महीने पहले घर से बाहर निकलना छोड़ दिये होती। यहाँ यह इस अवस्था में दिल्ली की बसों में घूमती-फिरती

है। मैंने कल इसे बहुत डराया-धमकाया तो इसने छुट्टी ली। मैंने स्पष्ट कह दिया था मैं तुम्हारे प्रसव में सेवा करने आई हूँ, तुम्हारी अर्थी के साथ श्मशान-भूमि जाने के लिए नहीं आई। तब कहीं जाकर इसकी समझ में बात आई कि इसे घर बैठना चाहिए। आज यह अनुभव करती है कि मेरे कहने में तथ्य था।"

"शुक्र है भगवान् का, समय पर ही समझ आ गई है। बहू! लालाजी ने हमको भेजा है कि तुमको टैक्सी में बिठाकर अपने घर ले आएँ।"

"वहाँ क्या है?" कुन्तल ने विस्मय में पूछ लिया।

सोमा चाची ने राधा के उत्तर देने से पूर्व ही प्रसन्नता प्रकट करते हुए पूछ लिया, "सत्य कहती हो, बहू?"

"हाँ चाची! और उन्होंने कहा है कि जब तक कुन्तल साथ न आये हम दोनों यहीं रहें अर्थात् हमको घर से निकाल दिया गया है।"

"यह तो कुन्तल पर अन्याय हो जाएगा।"

"कुन्तल पर क्यों?" रमणी ने पूछ लिया।

"तुम दोनों घर वापस न गई तो तुम्हारे पति तुमको ढूँढ़ते हुए यहाँ आ जाएँगे। वे भी बिना तुम्हारे घर नहीं लौटेंगे। फिर तुम्हारी तीसरी बहन भी आ जाएगी और फिर मोहन भी आयेगा। यहाँ इतनी जगह ही कहाँ है? सब लोग भूमि पर ही लेटेंगे तो भी स्थान पूरा नहीं होगा। फिर रोटी-पानी का भी तो प्रश्न है।"

रमणी ने मुस्कराते हुए कहा, "तो फिर कुन्तल को श्वसुरजी का कहना मान लेना चाहिए, जिससे न हमको कष्ट हो और न हमारे घर वालों को। सबसे बड़ी बात तो यह है कि अपने पति को कठिनाई से बचाने के लिए इसे यहाँ से हमारे घर चले जाना चाहिए। वहाँ इसकी अवस्थानुकूल प्रबन्ध कर दिया जाएगा।"

"बताओ कुन्तल! क्या विचार है?" कुलवन्त ने पूछ लिया।

कुन्तल देख रही थी कि सब बातें उसकी योजना के विपरीत हो रही हैं। सर्वप्रथम वह समय से पूर्व ही दुर्बल हो रही थी। दूसरे, सोमा चाची दिल्ली आकर चुपचाप नहीं बैठ सकी। आने के दूसरे दिन ही सम्बन्धियों में चर्चा चल पड़ी थी। इस प्रकार सभी परिचितों में उसके बच्चा होने की धूम

मच गई थी। अब जेठ-जेठानियाँ यहाँ डेरा डालना चाहते हैं। इससे वह परेशानी में पड़ गई और अपने पति का मुख देखने लगी।

कुलवन्त ने कहा, "भाभियों का आग्रह कैसे टाला जा सकता है। साथ ही मैं सबसे छोटा हूँ। सबको मुझे आज्ञा देने का अधिकार है। यहाँ रहें तो ना नहीं कर सकता, मेरा सब-कुछ उठाकर ले जाएँ तो चूँ नहीं कर सकता।"

"कुलवन्त भैया!" राधा ने कहा, "हम तुमसे बड़ी तो हैं ही, पर हमसे बड़े लालाजी हैं। उनकी इच्छा है कि उनके सबसे छोटे लड़के का लड़का उनके घर पर हो। यदि यह अपनी माँ के घर चली जाती तो बात दूसरी थी। जब नहीं गई तो मेरे घर चले। मैं इसकी माँ के स्थान पर हूँ।"

कुलवन्त देख रहा था कि सोमा चाची के आने से ही उसका खर्चा दुगुना हो रहा है। जहाँ वे पति-पत्नी दिन-भर में पाँच-छः टोस्ट खाते थे, वहाँ उनकी चाची सेर-भर आटा दिन-रात में समाप्त कर देती है। सब्जी, घी और फल का व्यय भी दुगुना हो जाएगा। फिर सोमा चाची रात को कुछ मीठा खाने की भी इच्छा रखती है! कम-से-कम दो रुपया नित्य का भोजन आदि का व्यय बढ़ जाएगा। वह विचार करने लगा कि यदि उसकी भाभियाँ वहाँ रहने लगीं और उसके भाई तथा बहनें आने-जाने लगीं तो उसका तो दिवाला ही निकल जाएगा। इस कारण मन-ही-मन उसने निश्चय कर लिया कि कुन्तल को समझा-बुझाकर वह भैया के घर भेज देगा।

इस कारण उसने कह दिया, "भाभी! मैंने कहा है न कि मैं इनकार नहीं कर सकता। परन्तु यह तो कुन्तल के विचार करने की बात है कि वह प्रसव हस्पताल में करेगी, यहाँ करेगी अथवा आपके घर करेगी। क्यों कुन्तल! क्या विचार है?"

"मैं तो कुछ निश्चय नहीं कर सकी। मैं तो यह सोच रही थी कि जिनके परिवार की सीमा इतनी लम्बी-चौड़ी नहीं, वे स्त्रियाँ क्या करती होंगी?"

"यह भी कोई युक्ति है?" सोमा चाची ने कहा, "एक लखपति को यह विचार कर कि उनकी क्या अवस्था होती होगी जिनके पास धन नहीं, अपना लाखों यमुनाजी में बहा देना चाहिए क्या? कुलवन्त बेटा? क्या

आजकल स्कूलों में यही पढ़ाया जाता है ?"

सब हँसने लगे। बात को बदलने के लिए कुलवन्त ने कह दिया, "चाची ! तुम तो कहती थीं कि तुम कुछ पढ़ी-लिखी नहीं। अब तुम बी० ए०, बी० टी० पास लड़की को शिक्षा देना चाहती हो।"

"कुलवन्त ! क्या स्कूल और कॉलिजों की पढ़ाई ही पढ़ाई होती है ? देखो, मैं समाज-रूपी स्कूल में रहती हूँ और उस स्कूल की शिक्षा मैंने पाई है। यह शिक्षा मुझको मिली है पचास वर्ष तक आँखें खोलकर समाज में विचरने से।"

"बहुत दिन पढ़ाई की है, चाची !"

"हाँ और यह पढ़ाई अभी समाप्त नहीं हुई। समाज-रूपी स्कूल भी तो बहुत बड़ा है। इसमें बहुत सारी श्रेणियाँ हैं और इसका पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत है।"

"परन्तु चाची ! पढ़ती-पढ़ती मर जाओगी तो फिर इस पढ़ाई का क्या लाभ होगा ?"

"कुलवन्त बेटा ! मैं नहीं मरूँगी। तुमने सुना नहीं—'आत्मा मरती नहीं। जिसम को चाहे मारो, काटती असल हकीकत को यह तलवार नहीं।' जो मैं हकीकत में हूँ, उसको कोई मार नहीं सकता।"

"फिर वही बात चाची ! किसने देखा है आत्मा को ?"

"मैंने देखा है, कुलवन्त ! जानते हो कब ? जब मेरे पति का देहान्त हुआ था। मैं और वे एकान्त में थे। वे कह रहे थे, 'कुछ घबराहट अनुभव हो रही है। मेरे साथ आकर लेट जाओ'। मैं लेट गई। मैंने आलिंगन किया तो उनके हृदय की गति रुक गई। वे जो मुझको देखकर ही प्रेमवश उत्तेजित हो जाया करते थे, मेरे लाख यत्न करने पर भी टस-से-मस नहीं हुए। मैं तब बालिका मात्र ही थी। मुझको यह ज्ञान होते देर लगी कि वे मर गये हैं। मरे होने पर भी वे वैसे ही थे। उस समय भी उनका मुख मुस्करा रहा था। वे स्थिर आँखों से मेरी ओर देख रहे थे, परन्तु उनमें चेतना नहीं थी। मेरे आलिंगन और प्रेम-प्रलाप पर उनमें कुछ भी हरकत नहीं हुई थी।

"उस समय मेरी समझ में आया कि उनका शरीर तो मेरे साथ पड़ा है, परन्तु उस शरीर में से कुछ निकल चुका है। वही हकीकत में कुछ था

समझे हो, कुलवन्त ! तब से ही मैं स्वयं को शरीर से पृथक् मानने लगी हूँ—वह जो शरीर से पृथक् नित्य नयी-नयी शिक्षा ग्रहण करता रहता है।"

सोमा चाची की आँखों से टप-टप अश्रु गिरने लगे थे। उसके गाल तर हो चुके थे। उसने आँचल से आँखें पोंछी और आँखें मूँद, कुरसी की सीट से ढासना लगा लिया।

राधा और रमणी की भी आँखें भीग गई थीं। कुन्तल ने समझ लिया था कि उसका जेठानी के घर चला जाना ही उचित है। कम-से-कम खर्चा तो बचेगा ही। उसके अपने घर ठहरने से जो सहस्रों रुपये व्यय होने की आशंका थी, वह तो बच ही जाएगा।

इतना विचार कर वह उठी और अपने पति से कहने लगी, "आप जाइए, टैक्सी ले आइए। मैं तब तक अपने कपड़े अटैची-केस में डालती हूँ।"

जब शिक्षा का आधार भौतिकवाद हो तो शिक्षा की उपज असन्तोष तथा चंचलता होती है। वर्तमान युग में प्राय: सब देशों में, जहाँ इसका आधार भौतिकवाद है, उसका यही परिणाम देखने में आता है।

भौतिकवादी शिक्षा का अर्थ है भौतिक उन्नति का लक्ष्य रखकर निर्माण किया गया पाठ्यक्रम और इसके पढ़ने से शारीरिक सुख-प्राप्ति की आकाँक्षा। भौतिकवादी लक्ष्य से अर्थ है मानव को यही स्वीकार कराना कि वह केवल मात्र शरीर और शारीरिक सुख की उपलब्धि ही परम साध्य है। मनुष्य का अपने माता-पिता, भाई-वन्धुओं, मित्र-सखा आदि से सम्बन्ध केवल शारीरिक है और शारीरिक सुख की उपलब्धि ही इसका कारण है।

समाज में भी एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से सम्बन्ध शारीरिक ही है। शरीर के अतिरिक्त मनुष्य में कुछ है ही नहीं। इस मीमांसा का यह परिणाम स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थरत हो जाता है और इस स्वार्थ पर नियंत्रण केवलमात्र राज-दण्ड का ही रह जाता है। राज-दण्ड विज्ञान का आधार पाकर अति प्रबल हो गया है, फिर भी इसकी पहुँच अधिक दूर तक नहीं है। पुलिस, सेना, गुप्तचर-विभाग तथा शस्त्रास्त्र एवं यंत्रादि होने से राज्य की नियंत्रण-शक्ति में अपार वृद्धि हुई है, परन्तु राज्य के कर्मचारियों की पहुँच प्रत्येक स्वार्थरत व्यक्ति तक नहीं हो सकती। राज्य आतंक तो

उत्पन्न कर सकता है, परन्तु सुधार नहीं कर सकता। इस पूर्ण पद्धति अर्थात् शिक्षा, स्वार्थपरता और नियन्त्रण में सबसे बड़ा दोष है, नियन्त्रण संचालन करने वालों का स्वयं भौतिकवादी होने से स्वार्थी होना।

भारत में स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त भौतिकवादियों का नया युग आया है। यों तो इस युग का बीजारोपण अंग्रेज़ी राज्य-काल में ही हो गया था, परन्तु इसका विस्तार स्वराज्य-प्राप्ति के उपरान्त ही हुआ है। यह विस्तार उस शिक्षा द्वारा ही हुआ है, जिसका आधार भौतिकवाद है।

कुलवन्त तथा कुन्तल इसी भौतिकवादी शिक्षा के विषरूपी वृक्ष की उपज थे। उनकी पूर्ण दिनचर्या प्रातः उठने से लेकर रात्रि को सोने तक एक ही बिन्दु के चारों ओर चक्कर काटती रहती थी। वह बिन्दु था स्वार्थ अर्थात् शारीरिक सुख की उपलब्धि।

जब जुगलकिशोर की पत्नी राधा कुन्तल को समझा रही थी कि उसको इस कठिन काल में उनके घर चलकर रहना चाहिए, तब कुन्तल और कुलवन्त के विचार करने का आधार यह नहीं था कि कुन्तल के जाने से उनके सम्बन्धियों का कष्ट कम होगा, प्रत्युत् वे यह विचार कर रहे थे कि इससे उनको सुख मिलेगा तथा व्यय में कमी होगी।

जब सोमा चाची ने कहा था कि यदि कुन्तल न गई तो उसकी जेठानियाँ यहीं रह जाएँगी तथा तदनन्तर उनके घर वाले भी आएँगे तो उसका संकेत कुलवन्त के भाई-भावजों की असुविधा की ओर था, परन्तु कुलवन्त तथा कुन्तल का ध्यान इस ओर नहीं गया था। हाँ, जब उसने उनके खर्चे की ओर संकेत किया, तब दोनों उनके घर जाने को तैयार हो गए।

अन्त में जब सोमा चाची ने अपने पति की मृत्यु के दृश्य का वर्णन किया था तो कुन्तल भयभीत हो गई थी। उसको अपने जीवन का भय हो गया था और यह भय जेठानियों के घर पर कम था। इस कारण वह तुरन्त जेठानियों के घर जाने के लिए तैयार हो गई थी।

सोमा चाची को समझने में विलम्ब नहीं लगा कि कुलवन्त तथा उसकी पत्नी अत्यन्त स्वार्थी जीव हैं। तनिक विचार करने से ही वह जान गई थी कि उसका स्वार्थ न केवल [illegible] लोगों के [illegible] रहता है, प्रत्युत् अपने

सम्बन्धियों से और यहाँ तक कि पति-पत्नी के परस्पर व्यवहार में भी बना रहता है। अन्यथा पति अपनी पत्नी को नौकरी करने की स्वीकृति दे, यह उसकी समझ से बाहर था।

जब कुन्तल राधा और रमणी के साथ टैक्सी में बैठकर चली गई तो कुलवन्त और सोमा चाची अपने-अपने विचारों में लीन हो गए। कुलवन्त विचार कर रहा था कि अब सोमा चाची की आवश्यकता नहीं रहीं। अतः उसको भी चला जाना चाहिए। यहाँ उसके घर रहकर सेर-भर अन्न रोज़ खाकर मैला करने के अतिरिक्त वह करेगी ही क्या ? परन्तु वह सोचता था कि किस प्रकार उसको वहाँ से जाने के लिए कहे।

सोमा चाची यह विचार कर रही थी कि दस वर्ष पूर्व जब वह आई थी, उस समय कुलवन्त सातवीं श्रेणी में पढ़ता था। उसमें किशोरावस्था प्रस्फुटित हो रही थी और उस अवस्था में वह अत्यन्त ही आकर्षक प्रतीत होता था। सोमा चाची की अपनी कोई सन्तान नहीं थी और उसमें कुलवन्त के लिए वात्सल्य उभरा था। वह अपसे गाँव लौटते समय उससे यह वचन लेकर गई थी कि कुलवन्त उसको पत्र लिखेगा। कुलवन्त ने कोई पत्र नहीं लिखा और सोमा चाची, अपना छोटा-सा खेत अधिया पर काश्त के लिए देकर अपना निर्वाह करने के प्रयास में कुलवन्त और अपने दिल्ली के सम्बन्धियों को भूल गई थी।

मितव्ययता से तथा साधु-जीवन व्यतीत करते हुए वह अपनी थोड़ी-सी आय में से भी प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ बचाकर रख लेती थी। वह अपनी बचत अमृतसर में एक बैंक में जमा करा रही थी और पैंतालीस वर्ष के विधवा-जीवन में उसने कई सहस्र रुपया जमा कर लिया था। इस धन के आश्रय वह अपनी वृद्धावस्था आनन्द से व्यतीत करने की आशा करती थी।

उसको कुलवन्त का पत्र आया कि उसकी पत्नी के बच्चा होने वाला है तथा वह अकेली है, अतः चाची को उसकी सहायता के लिए दिल्ली आना चाहिए। इस पत्र को पाकर वह दिल्ली आने के लिए प्रेरणा नहीं पा रही थी, फिर भी दस वर्ष पूर्व की स्मृति का प्रभाव प्रबल सिद्ध हुआ और वह दिल्ली चली आई।

दिल्ली पहुँच [illegible] वह

सहृदयता तथा सरलता नहीं रही, जो दस वर्ष पूर्व उसने उसमें देखी थी। इतना समझने पर वह यह जानने की इच्छा करने लगी कि कुलवन्त के सगे-सम्बन्धियों के दिल्ली में होते हुए भी उसको दूर के सम्बन्धी को इतनी दूर से बुलाने की क्या आवश्यकता पड़ गई। वह यह भी जानने की लालसा रखती थी कि उसके विवाह के अवसर पर उसको क्यों नहीं बुलाया गया। बरकतराय से मिलने से पूर्व तो वह यही समझती थी कि यह बरकतराय की भूल थी, परन्तु बरकतराय तथा उसकी बहुओं से बातचीत करने पर उसको पता चल गया कि इसमें उनका कोई दोष नहीं था, कुलवन्त ने ही उस समय उसको बुलाना उचित नहीं समझा होगा।

राधा तथा रमणी के आने पर तो सारा ही रहस्य खुल गया था। वह कुन्तल और कुलवन्त की प्रकृति को समझ गई थी। इस परिस्थिति में वह विचार करने लगी थी कि अब उसका दिल्ली में कुछ कार्य शेष नहीं रहा।

रात को भोजन कर जब वह सोने लगी तो कुलवन्त उसके पास आकर बैठ गया। चाची ने प्रश्न-भरी दृष्टि से उसके मुख पर देखा तो कुलवन्त ने कहा, "चाची! तुम यहाँ अकेली रह गई हो। मैं समझता हूँ कि तुमको कुन्तल के साथ ही राधा भाभी के घर चले जाना चाहिए था। कहो तो तुमको सवेरे वहाँ छोड़ आऊँ?"

"देखो कुलवन्त! तुमने किसी कार्य-विशेष से मुझको अपने घर बुलाया था, अब वह कार्य तो रहा नहीं। जहाँ वह कार्य है, वहाँ के रहने वालों ने मुझको बुलाया नहीं। अतः मेरे वहाँ जाने का कोई प्रयोजन नहीं।"

"चाची! इस प्रकार नहीं। मैंने तुमको इस कठिन समय में कुन्तल की सहायता के लिए बुलाया था। किसी कारण-विशेष से कुन्तल वहाँ चली गई है। मैं समझता हूँ कि तुमको भी वहाँ उसके पास रहने के लिए चले जाना चाहिए।"

"वहाँ तो मैं तब तक नहीं जाऊँगी, जब तक वे मेरी आवश्यकता अनुभव नहीं करते। एक-आध दिन और देखूँगी कि कुन्तल को वहाँ मेरी किसी रूप में आवश्यकता है और उस घर के मालिक यह ठीक समझते हैं तो मैं वहाँ चली जाऊँगी, नहीं तो अपने गाँव लौट जाऊँगी।"

"चाची ! गाँव में क्या है ? यहीं रह जाओ न !"

"गाँव में मेरे पतिदेव की पुण्य-स्मृति है। उस स्मृति में मुझको इतने लम्बे सूने जीवन में अवलम्बन मिलता रहा है और अब जीवन के शेष दिन उसी अवलम्बन में व्यतीत कर दूँगी। एक अन्य भी कारण है। दिल्ली का महँगा जीवन मेरे वश का नहीं। यहाँ तो एक संतरा भी चार आने में आता है। वहाँ अपनी बगिया में से सन्तरे, केले, अमरूद आदि विना मूल्य मिल जाते हैं। ठेकेदार के साथ मेरी यह शर्त रहती है। साग-भाजी तो मैंने मकान के बाहर खुली जगह पर उगा रखी है। अनाज अपने खेत से आ जाता है। मुझे यदि कुछ वस्तु मोल लेनी पड़ती है तो नमक, मिर्च तथा पहनने के वस्त्र। इन वस्तुओं पर सौ-सवा सौ प्रतिवर्ष व्यय होता है। यहाँ दिल्ली में तो इतना एक महीने से पहले ही मैं व्यय कर दूँगी। बेटा कुलवन्त ! यह स्थान मेरे रहने योग्य नहीं है।"

'परन्तु इतना साफ़-सुथरा मकान वहाँ गाँव में मिलेगा क्या ?"

सोमा हँस पड़ी। हँसकर बोली, 'साफ़-सुथरे के अर्थ वहाँ यहाँ से भिन्न हैं। वहाँ सफ़ाई का अर्थ है स्वच्छ और खुली वायु का सेवन। बैठती हूँ चटाई पर, जहाँ मिट्टी लग जाए तो गीले कपड़े से वैसे ही साफ़ हो जाती है। खुले में तख्त पर सोती हूँ। वहाँ खुली हवा, मोटा खान-पान, शुद्ध घी और दूध, यह सब उपलब्ध है। यहाँ बन्द कमरों में सोना पड़ता है, सर्दियों में हवा गन्दी हो जाती है और गर्मियों में बिजली के पंखे चलाने पड़ते हैं। फ़र्श पर कालीन बिछा है, जिस पर पड़ी मिट्टी भलीभाँति साफ़ नहीं हो पाती। यहाँ मकानों में सजावट तो है, परन्तु ये सफ़ाई के लक्षण नहीं हैं।"

कुलवन्त सोमा चाची के विचार सुन प्रसन्न तो था, परन्तु वह स्वयं उनको वहाँ से चले जाने के लिए कहना नहीं चाहता था। अब सोमा चाची ने स्वयं ही जाने की इच्छा प्रकट की थी और यही वह चाहता भी था। फिर भी उसने दिखावे के लिए कह दिया, "चाची ! वहाँ तुम्हारा कहने के लिए कोई भी तो नहीं है। यहाँ कम-से-कम मैं तो हूँ। तुम नहीं चाहतीं क्या कि इस बुढ़ापे में कोई तुम्हरे पास रहे ?"

"तो तुम मेरे साथ वहाँ चले चलो। बताओ चलोगे ?"

"यह नौकरी कौन करेगा ?"

इस पर सोमा ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "नौकरी किसलिए करते हो भला ?"

"पेट भरने के लिए। नौकरी न करूँ तो खाऊँ-पीऊँ कहाँ से ?"

"वहाँ गाँव में खाना-पीना अनायास ही मिल जाता है। मैं भी तो खाती हूँ। मेरा विचार है कि मैं तुम दोनों से अधिक ही खा जाती हूँ और मिल ही जाता है। वहाँ चलकर रहो तो तुम दोनों और तुम्हारे बाल-बच्चों के खाने-पहनने की गारंटी मैं कर दूँगी।"

"कितनी आय होगी तुम्हारी ?"

"मैंने अपनी भूमि पट्टे पर दे रखी है। उसमें से दो सौ मन अनाज मिल जाता है। खा-पीकर तथा दान-दक्षिणा में देकर सौ मन के लगभग बच जाता है और वह मैं बेच देती हूँ। इसके छः-सात सौ रुपये मिल जाते हैं। फलों की एक बगिया है। वह मैं ठेकेदार को तीन सौ रुपये में दे देती हूँ। इस बगिया से मेरे खाने के लिए फल प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं। सब्ज़ी भाजी मैंने अपने मकान के आँगन में लगा रखी है।

"इस प्रकार खा-पीकर एक सहस्र रुपया मेरे पास नकद आ जाता है। इन रुपयों से मैंने गाँव में ही एक मन्दिर बनवाया है। इसमें प्रतिवर्ष नवरात्रों में विशेष पूजा होती है। साथ ही यह मन्दिर धर्मशाला का काम देता है।

"फिर भी मेरे पास रुपया एकत्रित हो रहा है। वह मैं बैंक में जमा करा रही हूँ।"

"परन्तु चाची ! हम दोनों की, मेरा मतलब है मेरी और कुन्तल की, आय इस समय लगभग पाँच सहस्र रुपये है। इतनी आय तो वहाँ नहीं हो सकेगी ?"

"कितना जमा कर लिया है अब तक ?"

"विवाह के पूर्व तो मेरे पास कुछ था नहीं। कुन्तल ने एक सहस्र जमा कर रखा था। वह इस मकान में फर्नीचर आदि सामान में लग गया। विवाह पर पिताजी ने एक सहस्र रुपया दिया था। वह हमने बैंक में जमा कर रखा है। समय-कुसमय उसमें से निकालते रहते हैं। अभी भी उसमें छः सौ रुपया जमा है।"

"अर्थात् तुम अपनी आय में से कुछ भी नहीं बचा सकते ?"

कुलवन्त वितर-वितर चाची का मुख देखने लगा। कुछ विचार कर बोला, "कुछ तो बचत होती ही है। मेरे और कुन्तल के 'प्रॉविडेंट फंड' में रुपये जमा हो रहे हैं। उसमें से आवश्यकता पड़ने पर उधार भी मिल जाता है।"

"देखो कुलवन्त ! मैं तो दिल्ली में रहूँगी नहीं। मेरा तो यहाँ दम घुटता-सा रहता है। जब यहाँ काम करने को कुछ नहीं रहा, तो यहाँ रहना भी व्यर्थ हो गया है। वैसे तो मैं किसी भी मनुष्य के रहने के लिए यह स्थान ठीक नहीं समझती। ये नगर तो पशु बाँधने के अस्तबल-मात्र हैं।"

"ओह ! और ये बिजली-पानी, पक्की सड़कें, फ़्लश की टट्टियाँ क्या ये सब पशुओं के लिए हैं ?"

"हाँ, उन्नत प्रकार के पशुओं के लिए। मनुष्य और पशु में अन्तर तुम समझते ही हो। एक शरीर-रूपी जेल में बन्दी आत्मा है, दूसरा शरीर-रूपी रथ पर सवार होने वाला आत्मा। एक अपने पूर्व-कर्मों का फल भोग रहा है और दूसरा अपनी अमर यात्रा पर स्वेच्छा से भागता चला जाता है।"

"अमर यात्रा ? यह क्या कह रही हो, चाची ?"

"ठीक ही तो कह रही हूँ। इस नगर में रहने वाले तो अपने कर्म-फल भोग रहे प्रतीत होते हैं। कुछ बेचारे प्रतिकूल वातावरण में रहते हुए मनुष्य से पशु बनते जाते प्रतीत होते हैं।

"भला बताओ, कुलवन्त ! तुम्हारी पत्नी तुम्हारे लिये बच्चे पैदा करे और फिर नौकरी कर तुम्हारे लिये यह मेज़, कुर्सी, कालीन, दरियाँ, सोफे और पलँग भी लाकर दे, तो इसे कर्म-फल का भोग ही तो कहूँगी। और क्या कहूँ ?"

"अरे ! तुम्हारे देहात में क्या होता है ? स्त्रियाँ खेतों में काम नहीं करतीं क्या ?"

"करती हैं, जिनके कर्म-फल दुर्बल हैं। किसी भले परिवार की स्त्री घर में चरखा कात दे तो कात दे, या अनाज कूट-पीस दे और रोटी पका दे, परन्तु अपने पति के आराम के लिए किसी दूसरे की नौकरी करने नहीं जाती।"

"चाची ! तुम समझती क्यों नहीं ? यहाँ अकेले की कमाई पर निर्वाह होता ही नहीं। इसलिए पति-पत्नी दोनों को काम करना पड़ता है।"

"निर्वाह तो हो सकता है। हाँ, व्यर्थ के खर्च नहीं चल सकते! भला बताओ तो, यह गले में जो बाँधकर दफ़्तर जाते हो लंगोट-सा, कितने का आया है ?"

"साढ़े बारह रुपये का।"

"और उसके ऊपर जो पट्टे की तरह का सफेद-सफेद है।"

"वे तो पन्द्रह रुपये में छः आते हैं।"

"इन चीज़ों की भला क्या आवश्यकता है ? इनके स्थान पर बन्द गले का कोट पहन लेते तो कम-से-कम पचास-साठ रुपये बच जाते। और तुम्हारी अलमारी में पाँच-पाँच सूट टँगे रहते हैं। क्या दो से काम नहीं चल सकता ? इस प्रकार के कई खर्चे मैं अपने सामने देख रही हूँ जो बिलकुल व्यर्थ के हैं।

"मैं तो देख रही हूँ कि तुम दोनों निरे पशु हो। तुम अपनी सुख-सुविधा के लिए अपनी पत्नी को और वह अपने आराम के लिए तुमको काम पर जोत रही है।"

"तो तुम क्या चाहती हो, चाची ?"

"मैं कल तुम्हारे घर से चली जाऊँगी।"

यही तो कुलवन्त चाहता था, परन्तु एक 'डिप्लोमेट' की भाँति वह चुप रहता हुआ माथे पर चिन्ता की रेखाएँ बनाता हुआ बैठा रहा।

राधा और रमणी जब कुन्तल और उसके भारी सूटकेस को लेकर अपने घर पहुँचीं तो सब बच्चे इस नये जीवन को घर में आये देख, इसके चारों ओर खड़े हो मुख देखने लगे। राधा के दो लड़के तो दिल्ली गेट के बाहर मैदान में खेलने गये हुए थे। उसकी एक लड़की कुन्तल के सामने खड़ी थी। रामस्वरूप के दो बच्चे थे और एक बच्चा मोहनदास का था। सबको बितर-बितर कुन्तल का मुख देखते पा राधा ने एक को कह दिया, "वशिष्ठ ! क्या देख रहे हो ? चाची को पायलागूँ नहीं करोगे ?"

"ये चाची हैं ?" सन्तोषी, राधा की लड़की ने पूछ लिया।

"हाँ कुलवन्त चाचा वाली चाची।"

सन्तोषी ने कुछ झुकते हुए कह दिया, "चाची ! पायलागूँ।"

तब अन्य सभी बच्चों ने भी पायलागूँ कर दी। कुन्तल को इस प्रकार के व्यवहार का अनुभव नहीं था। इस कारण उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। राधा ने कुन्तल को बाजू से पकड़कर बैठक में ले जाकर बिठाया। सन्तोषी तथा अन्य बच्चे भी वहाँ जा पहुँचे।

सन्तोषी ने पूछा, ' चाची ! कहाँ रहती हो तुम ?"

"तुम्हारे चाचा के घर।" कुन्तल ने मुस्कराकर उत्तर दे दिया।

"तो अब वह घर छोड़ आई हो ?"

राधा ने सन्तोषी को समझाया, "नहीं सन्तोषी ! ये कुछ महीने हमारे घर रहने आई हैं।"

"और उसके बाद चली जाएँगी ?"

"यदि तुम इनका आदर-सत्कार करोगी और इनकी सेवा करोगी तो ये यहाँ भी रह सकती हैं।"

सन्तोषी समझ नहीं सकी कि क्या उत्तर दे।

वशिष्ठ ने पूछ लिया, "चाचा कहाँ हैं ?"

"वे भी आएँगे।"

पहले-पहल तो कुन्तल को इस घर में आने पर आराम अनुभव हुआ। वर्षों से वह स्कूल में काम करती चली आ रही थी। यहाँ करने को कुछ नहीं था। वह पढ़ने के लिए कुछ उपन्यास अपने साथ लाई थी। वैसे तो वह उन्हें एक बार पढ़ चुकी थी, परन्तु अब समय खाली मिलने के कारण पुनः पढ़ने लगी। सर्वथा काम से रिक्त होने के कारण उसको इनमें भी रस आने लगा और इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा।

जुगलकिशोर का विचार था कि कुलवन्त भी रात को आएगा, परन्तु वह नहीं आया। अगले दिन वह अभी स्नान-ध्यान से अवकाश पा, भोजन के लिए बैठा ही था कि सोमा चाची आ गई। रामस्वरूप तो ठीक दस बजे अपनी कम्पनी के कार्यालय में जा बैठता था और वह स्कूल जाने वाले बच्चों से भी पहले घर से निकल जाता था। मोहनदास का काम प्रायः सरकारी दफ़्तरों से रहता था अतः वह ग्यारह बजे के लगभग जाता था। जुगलकिशोर मारकिट में जाकर माल की टोह लेता रहता था।

रामस्वरूप भोजन कर चुका था और बच्चे भोजन कर रहे थे। सोमा आई तो जुगलकिशोर ने आगे बढ़कर पायलागूँ की और कहा, "चाची ! तुमको तो रात में ही आ जाना चाहिए था ?"

"जुगल बेटा ! तुम्हारी बहू ने तो आने के लिए कहा ही नहीं था। आज मैं गाँव लौट रही थी, इस कारण सोचा कि जाने से पहले मिल आऊं।"

"क्यों ? गाँव जाने की इतनी जल्दी क्या हो गई है ?"

रामस्वरूप चाची की आवाज़ सुन, अपने कमरे से निकल आया और पायलागूँ करके बोला, "मालूम होता है, चाची कुलवन्त से लड़कर आई है। क्यों चाची ! ठीक है न ?"

"नहीं, लड़कर तो नहीं आई। हाँ, मेरी उसमें अरुचि हो गई है।"

"यह तो लड़ाई से भी भयंकर बात है। क्या हुआ है, चाची ?"

इस समय दोनों भाई चाची को लेकर बैठक में आ गए थे। चाची को वहाँ बिठा, जुगलकिशोर ने अपनी पत्नी को आवाज़ दी, "राधा ! देखो, चाची आई हैं।"

आवाज़ सुनकर राधा, जो बच्चों को रसोई में भोजन खिला रही थी, वहाँ आ पहुँची। रमणी तथा रेवा रसोई में भोजन बना रही थीं। कुन्तल भी चाची की आवाज़ सुन, अपने कमरे से बाहर आ गई।

"लो चाची ! तुम्हारी बहू भी आ गई।" जुगल ने कुन्तल की ओर संकेत कर कहा। कुन्तल कुर्सी पर बैठ गई। अब जुगल ने अपनी पत्नी को कह दिया, "राधा ! चाची कहती हैं कि तुमने उनको कल यहाँ आने का निमन्त्रण नहीं दिया, इसीलिए रूठकर ये गाँव वापस जा रही हैं।"

"चाची को तो हम कई बार बुला चुके हैं। वशिष्ठ के मुण्डन पर भी बुलाया था, ये नहीं आईं। अब तो यह अपने लड़के और बहू के काम से आई हैं, अतः यह उनके अधिकार में थीं। मैं कैसे छोटे भैया के अधिकार में हस्तक्षेप कर सकती थी ?"

चाची ने मुस्कराकर कह दिया, "राधा ठीक कहती है। आपके घर तब आऊँगी, जब आप मुझको गाँव लेने आएँगे। कुलवन्त के पोस्टकार्ड डालने पर ही मैं चली आई थी और मैं समझती हूँ कि मैंने भूल की है।"

"तो राम का कहना ठीक है कि तुम कुलवन्त से लड़कर आई हो। देखो

चाची ! हम तो तुम्हारे बच्चे हैं न ? हम तो कोई भूल भी करें तो तुमको क्षमा कर देना चाहिए।"

"देखो जुगल ! मैं किसी से लड़कर नहीं आई। मैं दिल्ली शहर से ही असन्तुष्ट होकर जा रही हूँ। तीन रात मैं कुलवन्त के कमरे में सोई हूँ और ऐसा अनुभव कर रही हूँ, मानो जेलखाने में बन्दी थी। मैं कुलवन्त को कह आई हूँ कि प्रसव के उपरान्त बहू को मेरे पास गाँव भेज दे और मैं उसको घोड़ी की भाँति उछलती-कूदती हुई कर दूँगी।"

"तो चाची ! क्या हमारी पत्नियों ने कुछ पाप किये हैं, जो उनको घोड़ी की भाँति उछलती-कूदती नहीं करना चाहतीं ?"

"तुम्हारी पत्नियाँ तो स्कूल में पढ़ाती नहीं। इस बेचारी को तो इसके घरवाले ने हलुवा बना रखा है। दिन-भर स्कूल में पढ़ाती थी, सुबह-शाम खाना बनाती थी और फिर बच्चे भी पैदा कर रही है। कुलवन्त को मैं कह आई हूँ कि वह सरासर अन्याय कर रहा है।"

"देखो राधा !" जुगल ने अपनी पत्नी को सम्बोधन कर कहा, "चाची तुमको गाँव में तब बुलाएगी, जब मैं भी तुम्हारा हलुवा बनाकर खा जाऊँगा।"

"खा गए तो फिर निमन्त्रण किसको मिलेगा ?"

"अच्छा जुगल ! तुम्हारे पिता कहाँ हैं ? जरा उनके भी दर्शन कर लूँ, तो फिर विदा माँगूँ।"

"चाची ! वे आने ही वाले होंगे। वैसे रहते पुराने घर में ही हैं। बड़े भैया भी उनके पास रहते हैं। दोपहर का भोजन यहीं करते हैं। बस आने ही वाले होंगे। पर चाची, मैं तो कहता हूँ कि तुम कुछ दिन हमारे यहाँ भी ठहर जाओ। गाँव में कौन-से पोते-नाती बैठे होंगे, जो तुम्हें पुकार रहे होंगे ?"

"नहीं भैया ! मैं विचार कर रही हूँ कि मेरी गाय अगले मास में ब्याएगी तो तुम सबको निमन्त्रण भेज दूँगी।"

यह सुन सब हँस पड़े। इस समय वहाँ रमणी भी आ गई थी। केवल रेवा अभी भी रसोईघर में थी।

चाची की बात पर कुन्तल के माथे पर त्यौरी चढ़ गई। रमणी ने कुन्तल के समीप बैठकर पूछ लिया, "चाची ! यहाँ गाय बियाने आई थीं ?"

"और क्या ! यदि यह घोड़ी होती तो ऐसे घर वाले को दो दुलत्ती मार कर घर से निकाल देती। गाय ही तो है जो इस अवस्था में भी सारे कष्ट सहती रही है। यह तो मैंने आकर ही इसे बताया था कि घर से निकलना बन्द करे।"

"पर चाची !" अब कुन्तल ने अपने पति की सफ़ाई देते हुए कहा, "मैं तो अपनी इच्छा से ही पढ़ाने जाती थी।"

"देखो कुन्तल ! मैंने तुमको समझाया और तुम मान गई। तुमने छुट्टी ले ली। क्या वह तुमको नहीं समझा सकता था ?

"मैंने यह बात भलीभाँति समझ ली है कि फ़र्नीचर, कपड़े, सिनेमा और ऐसे ही व्यर्थ के खर्चों के लिए अपनी पत्नी को वह नौकरी कराना चाहता है। एक आदमी की कमाई घर-भर के खर्च के लिए काफ़ी होती है।"

"तो घर के अन्य लोग क्या करें ? खाली बैठे रोटियाँ तोड़ें ?"

"स्त्रियाँ वही कुछ करें जो अब तुम कर रही हो या वह करें जो रमणी अभी रसोई में कर रही थी। कुन्तल ! यह काम सिनेमा देखने के लिए धन पैदा करने से अधिक आवश्यक है।"

"चाची ! कुछ दिन दिल्ली में रहो तो तुम प्रत्येक कार्य का ठीक-ठीक मूल्यांकन कर सकोगी।"

"ठीक है", जुगलकिशोर ने कह दिया, "चाची ! एक वर्ष तक यहाँ रहकर देखो और फिर बताना कि पति-पत्नी दोनों नौकरी करके ठीक कर रहे हैं अथवा नहीं ?"

"तो पहले नरक-कुण्ड में स्नान करूँ और फिर देखूँ कि यह सुगन्ध दे रहा है और दुर्गन्ध ? बेटा ! मुझे तो दूर से इसकी दुर्गन्ध आ रही है।"

सोमा चाची दिल्ली नहीं रही। सब उसको सनकी मानते थे। कुन्तल तो अपने पति की आलोचना सुन, उसको कुछ-कुछ पागल मानने लग गई थी। जब वह चली गई तो सब अपने-अपने काम में लीन हो गए।

जुगलकिशोर और उसके दोनों भाई एक ही कम्पनी में काम करते थे। यह कम्पनी विदेशों में माल मँगवाने का कार्य करती थी। इम्पोर्ट पर प्रतिबन्धियाँ थीं और एक सीमित मात्रा में ही माल मँगवाया जा सकता था।

इस कारण विदेशी माल अच्छे मूल्य पर बिकता था। कठिनाई केवल स्वयं को इम्पोर्टर्स के रूप में रजिस्टर करवाने तथा इम्पोर्ट लाइसेंस प्राप्त करने की होती थी। कम्पनी की रजिस्ट्री तो हो चुकी थी। लायसेंस के लिए अफ़सरों से मेल-जोल बनाए रखना पड़ता था। कम्पनी मुख्यतया कागज़ तथा टायलेट का सामान ही मँगवाती थी।

मोहनदास अफ़सरों से मेल-जोल बनाए रखने में सिद्धहस्त था। प्रतिदिन वह लंच के समय सेक्रेटेरिएट के कॉमर्स-विभाग में पहुँच जाता था। पिछले पाँच वर्ष की अवधि में उसका इस विभाग के एक साधारण क्लर्क से लेकर बड़े-से-बड़े अफ़सर तक से परिचय हो गया था। वह प्रायः सायंकाल अफ़सरों को चाय का निमन्त्रण देता रहता था।

रामस्वरूप विदेशी कम्पनियों से सम्पर्क बनाये रखता था तथा बाज़ार में उस माल की खपत के स्थान ढूँढ़ता रहता था। विदेशों से माल आते ही गोदाम भर लिये जाते थे। समय पर जब दाम अच्छे मिलते, तो माल बेच दिया जाता। इस प्रकार कम्पनी को तिगुना-चौगुना लाभ हो जाता।

इस स्वतन्त्र सरकार के शासन में तो कई ऐसे लोग भी लाइसेंस पाने लगे थे, जिनके पास माल मँगवाने के लिए धन नहीं होता था। ये लोग लायसेंस बेच देते थे तथा उस पर उचित लाभ ले लेते थे।

जुगलकिशोर आदि को कभी लायसेंस बेचने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी, इस कारण इनको माल पर पूरा-पूरा लाभ मिलता था।

पिछले पाँच वर्ष की अवधि में कम्पनी ने लाखों पैदा किये थे। इस लाभ की राशि में से ही चालीस हज़ार का मकान दरियागंज में बनवाया गया था।

बरकतराय तथा उसका बड़ा लड़का भगतराम अभी भी कूँचा पातीराम वाले पुराने मकान में रहते थे। उनका कहना था कि इनको इस मकान की जलवायु अधिक सुखकारक प्रतीत होती है। वास्तविक बात यह थी कि बरकतराय अपना मकान भाड़े पर चढ़ाना उचित नहीं मानता था। इस मकान को उसने अपने खून-पसीने की कमाई से खरीदा था और वह नहीं चाहता था कि ऐरे-ग़ैरे किरायेदारों के पैरों की ठोकरों में यह मकान आये। जब उसके लड़कों ने बहुत आग्रह किया कि वह दरियागंज वाले खुले मकान में आ जाए तो उसने स्पष्ट कह दिया कि उसके मरने के उपरान्त ही वह

मकान भाड़े पर चढ़ सकता है। उसके लिए वह मकान देव-स्थान है।"

बरकतराय के लड़के पिता की यह बात सुनकर चुप रह गए। वे उसकी भावना का आदर करते थे। भगतराम एक छोटा-सा मकान करौलबाग में बनवा रहा था।

कुलवन्त की बात दूसरी थी। उसमें और मोहनदास में, जो लगभग बराबर ही पढ़े हुए थे, अन्तर यह था कि मोहनदास ने अंग्रेज़ी राज्य में बी० ए० पास किया था और सनातन धर्म कॉलेज का विद्यार्थी रहा था और कुलवन्त ने स्वराज्य मिलने के उपरान्त सेन्ट स्टीफन्स कॉलेज से एम० ए० किया था। मोहन ने सन् १९४५ में बी० ए० किया था और कुलवन्त ने सन् १९५२ में। लाहौर और दिल्ली में अन्तर था, राज्य और अध्यापकों में अन्तर था और सनातन धर्म तथा स्टीफन्स कॉलेज में अन्तर था। इससे दोनों भाइयों के दृष्टिकोण में अन्तर आ गया था और फिर जीवन-चर्या में भी अन्तर आ गया था।

कुलवन्त की पत्नी कुन्तल को दरियागंज में अपनी जेठानियों के पास रहते हुए एक सप्ताह व्यतीत हो गया था। इस अवधि में कुलवन्त उसका समाचार लेने ही नहीं आया। इस पर भाई और भावजें विस्मय करते थे, परन्तु कुन्तल कह देती, "उन्हें यहाँ आकर करना भी क्या है ? नहीं आये तो अच्छा ही किया। व्यर्थ में तंग करते।"

भावजें इसका अर्थ समझती थीं और उसकी बात सुनकर मुस्करा देती थीं। आखिर एक दिन कुलवन्त आ ही गया। रविवार का दिन था। वह भोजन के समय से पूर्व आया था। तीनों भाई बाज़ार बन्द होने के कारण घर पर ही थे। पिता भी भोजन के समय यहाँ आ जाया करते थे। इस प्रकार बरकतराय का अपने चारों लड़कों तथा उनकी बहुओं के साथ मिलकर भोजन करने का यह प्रथम अवसर था।

कुलवन्त आया तो पिता ने कहा, "जुगल ! आज तो कुछ बाँटना चाहिए। आप चारों भाई अपनी बहुओं के साथ एक छत के नीचे एकत्रित हुए हो।"

"पिताजी ! जो कहिए बाँट दें।"

"एक सौ रुपये किसी धर्म-स्थान के लिए दे दो।"

"वाह पिताजी !" कुलवन्त ने कह दिया, "एकत्रित हम हुए हैं। यह रुपया हममें ही बाँटना चाहिए। धर्म-स्थान में देने से क्या लाभ होगा ?"

परन्तु जुगल ने कुलवन्त की बात अनसुनी करके चैक-बुक निकाली और पूछने लगा, "पिताजी ! कहाँ भेजना चाहिए यह रुपया ?"

"शिवानन्द आश्रम, निःशुल्क चिकित्सालय के लिए ऋषिकेश भेज दो।"

जुगलकिशोर ने चैक लिखना आरम्भ कर दिया। परन्तु कुलवन्त को तो यह जीवन और धन के साथ हँसी लगी। उसने कह दिया, "पिताजी ! यह तो पता चल गया कि आपके पास व्यर्थ का धन बहुत है। परन्तु इसको इस प्रकार गंगा में बहा देना तो पाप हो जाएगा।"

बरकतराय ने पूछा, "कुलवन्त ! अपनी आय में से कभी कुछ दान भी करते हो ?"

"पिताजी ! पति-पत्नी दोनों, आठ घण्टे मज़दूरी करते हैं, तब जाकर कहीं पेट भरता है। दान-दक्षिणा के लिए कुछ बचता ही नहीं।"

"तुम दोनों का पेट बहुत बड़ा है क्यों राधा ! पिछले सप्ताह-भर में कुन्तल ने कितने बोरे अन्न के खाली कर दिये हैं ?"

यह सुन सब हँस पड़े। कुलवन्त ने कह दिया, "पिताजी ! इन 'ब्लैक मार्केटियर्स' के बोरे बहुत बड़े-बड़े हैं। इनमें से तो एक भी खाली नहीं हुआ और न होगा। समस्या तो हम मज़दूरों की है। कम आय होने से हमारे बोरे भी छोटे-छोटे हैं।"

"तो कुलवन्त ! तुम भी कोई व्यापार क्यों नहीं कर लेते ? किसने कहा है तुमको कि अपनी गर्भवती पत्नी को मज़दूरी में जोतो !"

कुलवन्त को कहना पड़ा, "पिताजी ! मुझसे यह ब्लैक मार्केटिंग का धन्धा नहीं होता।"

तीनों भाई हँस पड़े। परन्तु कुलवन्त की भाभियाँ गम्भीर बनी बैठी रहीं। कुन्तल इस प्रकार की बातचीत, इस घर के सदस्यों के सम्मुख, जबकि वह उनके पास सुख और आराम पा रही थी, बिलकुल पसन्द नहीं करती थी। यदि वह अपने पति के समीप बैठी होती तो उसको चुप रहने के लिए कहती, परन्तु उसके और उसके पति के बीच तीन प्राणी और बैठे थे।

बरकतराय ने अपने लड़कों को ब्लैक मार्केटियर्स बताये जाने पर मुस्कराते हुए कहा, "कुलवन्त ! कहाँ नौकरी करते हो ?"

"कॉलटैक्स में।"

"तुमको विदित है कि आजकल विदेशी माल मँगवाने पर सरकार ने कण्ट्रोल कर रखा है। हम एक पाई का भी माल बिना लायसेंस के नहीं मँगवा सकते।"

"जी हाँ ! यदि ऐसा न होता तो आप व्यापारी लोग देश को बेचकर पी गए होते।"

"परन्तु ऐसा नहीं हो रहा न ? हमारी कृपालु सरकार ने देश को पी लेने से बचा लिया। सो हमको सरकार का आभार मानना चाहिए। परन्तु बरखुरदार, जब सरकार ने देश को बचा लिया है तो फिर हम क्या कर रहे हैं ? हम तो सरकार की आज्ञा का पालन करते हैं।

"सरकार विदेशी मुद्रा वितरण करती है। उसमें से ही वह कुछ हमको भी दे देती है। सरकार हमको यह बता देती है कि कौन-सा माल कहाँ से मँगवाना है। हम उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। जितनी मुद्रा हमको मिलती है, उतने का ही माल हम मँगवा पाते हैं, अधिक नहीं। बताओ, क्या यह अनियमित है ?

"हमारे माल की कीमत पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। इस कारण हम उसको बाज़ार-भाव पर ही बेचते हैं। इसमें ब्लैक कहाँ से आ गई ?"

"देखो बेटा ! ब्लैक होती थी युद्ध के दिनों में, जब मूल्य पर कण्ट्रोल होता था और व्यापारी माल छिपा लेते थे और मनमाने दाम प्राप्त करते थे। आज तो ऐसा नहीं हो सकता। मूल्य पर कोई कन्ट्रोल नहीं है।

"आज यदि कोई ब्लैक करता है तो वह हमारी कृपालु सरकार ही कर रही है।"

"वह कैसे, पिताजी ?"

"कुलवन्त ! जब तुम्हें किसी बात का ज्ञान न हो तो उसका प्रदर्शन मत किया करो। देखो, मैं एक उदाहरण देता हूँ।

"सरकार ने अखबारी कागज़ बनाने का एक कारखाना 'नेपा' खोला हुआ है। यह कारखाना इतने घटिया प्रकार का कागज़ तैयार करता है कि

कोई मुफ़्त में भी इसको उठाकर ले जाने को तैयार नहीं। इसकी सूरत-शक्ल देखकर उलटी करने को जी करता है। सरकार ने इस कागज़ का दाम, इससे कहीं अच्छे विलायती अख़बारी कागज़ से भी अधिक रखा हुआ है। सब समाचार-पत्रों को एक निश्चित मात्रा में यह कागज़ मोल लेने के लिए बाध्य किया जाता है। बताओ, यह क्या है ? यह है 'ब्लैक मार्केटिंग' संगीनों की नोक पर।

"इसी प्रकार लोहे की उपज के लिए कारखाने सरकार स्वयं खोल रही हैं और लोहे का मूल्य बाज़ार में नियत कर रखा है। इस प्रकार सरकार लाखों का लाभ अनायास ही उठा रही है। बेटा ! ब्लैक मार्केटिंग इसको कहते हैं।"

"पिताजी !" कुलवन्त ने कह दिया, "सरकारी फैक्टरियाँ तो जनता की हैं। उनमें अधिक लाभ होता है तो जनता को होता है। एक व्यापारी के लाभ का हाल यह है कि बिना विचार किये सौ रुपये गंगा में बहा दिये।"

अब पुनः तीनों भाई और उनकी पत्नियाँ हँसने लगीं।

भोजन हुआ। सब विश्राम करने के लिए अपने-अपने कमरों में चले गये। कुलवन्त को कुन्तल अपने कमरे में ले गई। इस कमरे के साथ एक और कमरा था जो कुन्तल को सोने के लिए मिला हुआ था। सोने के कमरे के साथ एक पृथक् टट्टी तथा नहाने का कमरा था। सोने के कमरे में दो पलँग लगे हुए थे। एक ओर पढ़ने-लिखने के लिए मेज़ थी तथा पुस्तकें रखने के लिए रैक था। दीवार के साथ 'वार्डरोब' और एक तिपाई पर फूलदान था, जिसमें ताज़े फूलों का गुलदस्ता लगा था। दीवार पर सुन्दर दृश्यों के दो चित्र लगे थे।

कुलवन्त ने कमरे को देखकर कह दिया, "कमरा तो बहुत सुन्दर है।"

"हाँ और आरामदेह भी है। यह देखिए, आपका पलँग एक सप्ताह से आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।"

"मैं भाइयों का एहसान नहीं सह सकता।"

"बड़ी जेठानी तो बड़ी-हेल-मेल वाली हैं। वे पढ़ी-लिखी तो कुछ नहीं, परन्तु बड़े-बड़ों के कान कतरती हैं।"

"तुम्हारे कान तो नहीं कतरे उसने।"

"आपके तो अभी-अभी कतरे गए हैं। भला यह बहस कि आपके भाई ब्लैक मार्केटियर्स हैं, आज ही करनी थी! यह तो उनकी शराफ़त है कि आपकी गाली सुनकर भी हँसते रहे।"

"इनको गाली सुनने का अभ्यास है।"

"आज आपको क्या हो गया है? कैसी बहकी-बहकी बातें कर रहे हैं?"

"बहकी-बहकी नहीं कुन्तल! यह सम्भव नहीं कि ईमानदारी से कोई इतना धन पैदा कर सके।"

"हमारे स्कूल की चपरासिन भी यही कहती थी। स्कूल की मुख्याध्यापिका को चार सौ वेतन मिलता है और वह कहती थी कि वे हराम का खाती हैं।

"मैंने यह बात बड़ी जेठानी को कही थी। मेरा कहना था कि क्या ईमानदारी से इतनी आय हो सकती है तो उन्होंने कहा—'दाख न मिली तो थू कड़वी।'"

कुलवन्त ने अपनी आलोचना अपनी पत्नी के मुख से सुनकर उत्तेजित होकर कहा, "तो तुम पर भी इन पैसे वालों के अन्न का प्रभाव हो रहा है।"

कुन्तल पति का रुख देखकर चुप हो गई।

दो

कुन्तल के लड़की हुई। प्रसव मकान पर ही कराया गया। लेडी डॉक्टर और नर्स का प्रबन्ध तथा औषधि इत्यादि का प्रबन्ध जुगल ने कर दिया।

जब प्रसवकाल की छुट्टी समाप्त हुई तो डॉक्टर के सर्टिफ़िकेट पर दो मास की छुट्टी और ले ली गई। कुलवन्त की इच्छा नहीं थी कि छुट्टी ली जाए, क्योंकि यह छुट्टी बिना वेतन के थी। परन्तु जब राधा ने कुन्तल से ज़ोर देकर कहा तो वह मान गई। वास्तव में उसके मन में आलस्य छा गया था और वह अभी और आराम चाहती थी।

जब कुलवन्त को पता चला तो वह क्रोध से लाल-पीला होने लगा। उसने कुन्तल को डाँटना शुरू कर दिया। उसका कहना था कि इससे न केवल तीन सौ रुपये की हानि हुई है, प्रत्युत उसकी उन्नति होते-होते रुक गई है। उसका एक और भी आरोप था कि कुन्तल आरामपसन्द होती जा रही है, जिसका परिणाम यह होगा कि वह अब भलीभाँति काम नहीं कर सकेगी।

कुन्तल ने केवल इतना ही कहा, "जेठजी कहते हैं कि अब मुझको नौकरी ही छोड़ देनी चाहिए। बेबी के कारण घर पर भी काम तो बढ़ ही जाएगा।"

"तो निर्वाह कैसे होगा?" कुलवन्त का प्रश्न था।

"उनका कहना है कि फिजूलखर्चियाँ बन्द कर दी जाएँ और आपको अपनी आय बढ़ानी चाहिए।"

"आय कैसे बढ़ाऊँ? दो सौ पर नौकर हुआ था, दो वर्ष में ढाई सौ मिलने लगे हैं।"

"जेठजी का कहना था कि नौकरी उन लोगों के लिए है, जिनमें स्वतन्त्र रूप से विचार करने तथा कार्य करने की क्षमता न हो। यदि आप इन बातों को स्वयं में उत्पन्न करेंगे तो आप नौकरी की सीमाएँ तोड़-फोड़कर आगे निकल जाएँगे।"

"कुन्तल! यह बात आज के समाज में अवांछनीय मानी जाती है। आज सर्वत्र समाज में यह सिद्धान्त माना जा रहा है कि समाज-हित व्यक्ति के हित से ऊपर है। अतः व्यक्ति के जीवन का संचालन समाज के अधीन है। इस नये सिद्धान्तानुसार समाज सबका स्वामी है और व्यक्ति उसके अधीन अर्थात् उसका नौकर है।"

"यह तो कम्युनिस्ट सिद्धान्त है।"

"हाँ और यह सर्वश्रेष्ठ सिद्धान्त है।"

"परन्तु मेरा मन इसको पसन्द नहीं करता। फिर भी मैंने इस विषय पर कभी विचार नहीं किया। आप अपने बड़े भाई से बात कर लें।"

"उनसे क्या बात करूँ? वे कुछ पढ़े-लिखे तो हैं नहीं। 'पाँदे' से लुंडी पढ़े हैं। न इतिहास का ज्ञान है न भूगोल का, न अर्थशास्त्र जानते हैं न राजनीति।"

"फिर भी बात तो ऐसी करते हैं कि आपसे उत्तर नहीं बन पड़ता।"

"कुन्तल ! तुम उनके धन-वैभव के सम्मोहन में आ गई हो। यह धन न जाने किस प्रकार उनके हाथों आ गया है।"

कुन्तल पति के इस कथन पर मुस्कराकर बोली, "यह तो 'नाच न जाने आँगन टेढ़ा' वाली बात हो गई। खैर, कुछ भी हो इतना अवश्य है कि इस घर का प्रवन्ध बहुत अच्छा है। जेठजी बड़ी जेठानी को तीन सौ रुपये महीना देते हैं। इन तीन सौ में आठ बड़े प्राणी और नौ बच्चों की भोजन-व्यवस्था होती है। सब पाँच समय दिन में खाते हैं। कोई भूखा नहीं रहता। अब तो बेबी के लिए दूध बाज़ार से आने लगा है। हम दो प्राणी दो सौ रुपये भोजन पर खर्च करते थे। मैंने जेठानीजी से इसका रहस्य पूछा, तो वे बोलीं, 'यह करन विद्या है। यदि तुम नौकरी छोड़कर घर के प्रवन्ध में लग जाओ तो जितना वेतन पाती हो, उससे अधिक ही घर के खर्चे में से बचत कर सकोगी।'

"मैं विचार करती हूँ कि यदि यहाँ भी उसी भाँति खर्च किया जाए जैसे हम दो प्राणी करते थे, तो इस घर का खर्च हजार-बारह सौ से कदापि कम न हो।"

"मुझको विश्वास नहीं होता कि इतने कम में ये गुजारा करते हैं। अवश्य कहीं 'फ्राड' है।"

"आप स्वयं बात कर लीजिए। मैं तो चाहती हूँ कि जेठानीजी से यह कम खर्चे का रहस्य जान लूँ।"

"अर्थात् तुम भी गई ?"

"कहाँ गई ?"

"मेरे काम से।"

"जी नहीं। मैं आपकी सेवा के लिए ही यह पाठ पढ़ना चाहती हूँ।"

सबसे कठिन बात यह थी कि यद्यपि कुलवन्त सप्ताह में दो-तीन दिन अपने भाई के घर खाना खा जाता था, फिर भी उसके अपने निजी भोजन का व्यय डेढ़ सौ रुपये मासिक हो जाता था। वह खाना होटल में खाने लगा था। डेढ़ सौ रुपये भोजन पर, अस्सी रुपये मकान का किराया तथा बिजली पानी, धोबी आदि का खर्चा देकर उसका सारा वेतन समाप्त हो जाता था।

जब वह खाने के व्यय में कमी करने के लिए किसी ढाबे पर भोजन

करने जाता तो वहाँ की गन्दगी देख, उसका कलेजा मुख को आने लगता था और वह वहाँ कुछ खा-पी नहीं सकता था। यह एक बड़ा कारण था कि वह कुन्तल को घर ले जाने की उतावली मचा रहा था।

आज के कुन्तल के साथ वार्तालाप ने उसकी आशाओं पर पानी फेर दिया। इससे वह अपने भैया से झगड़ाकर अपनी पत्नी को अपने घर ले जाने के विषय में बात करने के लिए उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

इसके लिए उसको रात के आठ बजे तक प्रतीक्षा करनी पड़ी। आज जुगल की कम्पनी को एक लाख रुपये का 'टिशु पेपर' विदेशों से मँगवाने का लायसेंस मिला था। यह मोहनदास की भारी सफलता थी। एक लाख का तीन-चार मास में दुगुना-ढाई गुना होने की आशा थी। इससे जब जुगलकिशोर घर आया तो उसका मन अत्यन्त प्रफुल्लित था। जुगलकिशोर ने कुलवन्त को बैठे देखा तो उससे मिलने ड्राइंग-रूम में जा पहुँचा। कुन्तल इस समय अपने कमरे में बैठी बेबी को दूध पिला रही थी।

"सुनाओ कुलवन्त ! काम-काज कैसा चल रहा है ?"

"भैया ! पिछले मास पच्चीस रुपये उन्नति मिली थी।"

"अब कितना वेतन हो गया है ?"

"सब ढाई सौ मिल रहा है।"

"देखो कुलवन्त। मैं तो तुम्हारे जैसी नौकरी नहीं कर सकता। मेरे बचपन के समय पिताजी के विचार तथा घर की अवस्था ऐसी थी कि मैं शिक्षा नहीं पा सका। मैं तो थोड़ी-बहुत हिन्दी ही पढ़ सका हूँ। भगतराम मेरे जितना भी नहीं पढ़ा। वह अकेला ही व्यापार में इतना कुछ कर रहा है कि हम तीनों उतना नहीं कर पाते। उसने दस वर्ष में लाखों बनाए हैं और मकान-पर-मकान बना रहा है।

"एक मकान बनवाता है। पाँच वर्ष का भाड़ा पेशगी लेकर उसको भाड़े पर दे देता है। पाँच वर्ष का भाड़ा इतना मिल जाता है कि उस धन से एक नया मकान बनवा लेता है। इस प्रकार अब तक चार मकान बनवा चुका है। अभी कुछ दिन पूर्व 'फायर ब्रिगेड' की इमारत के बगल के प्लॉट में उसने एक तिमंज़िला मकान बनवाया था। साठ हज़ार की ज़मीन और ढाई लाख की इमारत। सवा तीन लाख खर्च कर उसने चार लाख भाड़े का प्राप्त कर

लिया है। अब वह कोई और प्लॉट लेने का विचार कर रहा है।"

"परन्तु भैया ! क्या यह सब बेईमानी नहीं ?" कुलवन्त का प्रश्न था।

"भला इसमें बेईमानी कहाँ से आ गई ?"

"रुपया मकान पर लगाकर इतना अधिक लाभ लेना।"

"देखो कुलवन्त। देश का कानून इसकी स्वीकृति देता है। वह चोरी कुछ भी नहीं करता। इन्कमटैक्स वालों को भी ठीक-ठीक हिसाब लिखकर देता है।"

"मेरा मतलब है कि कानून बनाने वाले ही बेईमान पैसे वाले हैं।"

जुगलकिशोर हँस पड़ा। उसने कहा, "संसद, जो कानून बनाती है, वह देश के बहुमत द्वारा निर्वाचित होती है। इस कारण तुम सारे देश को ही बेईमान कह रहे हो। कुलवन्त ! भला बताओ, पिछले निर्वाचन में तुमने किसको वोट दिया था ?"

"हमारे क्षेत्र में तो जनसंघ और कांग्रेस की टक्कर थी। दोनों ही बेईमान संस्थाएँ हैं। दोनों पैसे वालों की हैं। इस कारण मैंने किसी को भी वोट नहीं दिया।"

"वाह ! जब तुमने अपने अधिकार का प्रयोग ही नहीं किया तो दूसरों को गाली क्यों देते हो ? मतदान के समय वोट न डालने का अर्थ तो स्पष्ट रूप में यह है कि जो कुछ देश में हो रहा है, तुम उसको पसन्द करते हो। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं चाहते।"

"भैया ! तुमने किसको मत दिया था ?"

"हम दो भाइयों ने तो जनसंघ को मत दिया था, मोहनदास ने कांग्रेस को और बहुओं ने जनसंघ को।"

"जनसंघ को क्यों ?"

"इसलिए कि यह दल धर्म-कर्म के पक्ष में है। यह हिन्दुओं की संस्था है और हिन्दू धर्मानुकूल राज्य चलाना उचित मानता है।"

कुलवन्त हँस पड़ा। उसने कहा, "भैया ! जनसंघ का शासन आ गया तो देश का सत्यानाश होकर रहेगा। जनसंघ देश को दो सहस्र वर्ष पीछे धकेलना चाहता है, अर्थात् विधवा-विवाह वर्जित, सती-प्रथा चालू, कारें, हवाई जहाज नहीं चाहिएं, भारत में ऊँट चलने चाहिए। इस प्रकार की संस्था का

शासन हो गया तो बेड़ा गर्क होकर रहेगा।"

अब जुगल ने मुस्कराते हुए कह दिया, "ठीक है, कुलवन्त! यदि तुम जनसंघ का राज्य नहीं चाहते थे तो तुम कांग्रेस के पक्ष में मत देते, जहाँ बेईमानों की भरमार हो रही है।"

कुलवन्त ने अपने मन की बात बताते हुए कहा, "भारत की हालत ऐसी खराब हो चुकी है कि यहाँ हिटलर अथवा स्टालिन जैसे डिक्टेटर की आवश्यकता है।"

"परन्तु, कुलवन्त! डिक्टेटर वोटों से नहीं बनते। वे तो बन्दूकों से बनते हैं। वह न तो मेरे वोट से, न ही तुम्हारे वोट से बनेगा। वह तो सेना की सहायता से बनेगा। इस कारण यह विचार करना सेना का काम है। हाँ, यदि भारत में ऐसी अवस्था हुई तो हम व्यापारी क्या करेंगे, यह मैंने विचार कर लिया है।"

"क्या विचार किया है?"

"हम धर्म-परायण लोग हैं। धर्म का अर्थ राजा की आज्ञा पालन करना है। अतः जो भी राजा होगा, हम उसकी आज्ञा का पालन करेंगे।"

"चाहे वह आपकी पूर्ण सम्पत्ति छीनकर उस पर अधिकार कर ले?"

"हाँ, ऐसा भी हो सकता है। सुना है कि रूस में लेनिन ने यही किया था। पर कुलवन्त! हिटलर और मुसोलिनी अथवा स्टालिन और लेनिन का विरोध करना व्यापारियों का काम नहीं। यह काम उन लोगों का है जिनको स्वतन्त्र व्यापारियों तथा स्वतन्त्र व्यापार से लाभ होगा।"

"भला इन लुटेरों से भी किसी को लाभ हो सकता है?"

"हाँ, जनसाधारण को। इस जनसाधारण में सेना के लोग तथा विद्वान् लोग भी सम्मिलित हैं।"

"यह बात समझ में नहीं आई कि आपको लाखों का लाभ होने से भला एक मज़दूर को क्या लाभ होगा?"

"देखो कुलवन्त। मैं एक बात बताता हूँ, उससे ही सब-कुछ समझ लेना। हमारे पिताजी ने अपना जीवन सन् १९१० में आरम्भ किया था। उस समय उनकी आयु पन्द्रह वर्ष की थी। हमारे दादा का देहान्त हो चुका था। माँ थीं और बेचारी रोटी बना-बनाकर पुत्र को खिलाने के अतिरिक्त

अन्य कुछ करना नहीं जानती थीं। इस कारण पन्द्रह वर्ष के कुमार को अपने पिता का काम, दलाली ही करनी पड़ी।

"वे बताते थे कि पहले दिन ही वे आठ आने कमाकर लाए। माँ ने बहुत प्रसन्नता व्यक्त की। उसने पुत्र का माथा चूमा और पीठ पर हाथ फेरकर प्यार दिया। इस आठ आने से घर की रोटी चलने लगी। धीरे-धीरे पिताजी को काम का ढंग आने लगा। उनका परिचय और विश्वास बढ़ने लगा तो आय भी अधिक होने लगी। जब वे दो रुपये रोज़ कमाने लगे तो वे बहुत अमीर माने जाने लगे। वे नित्य प्रातः शिव-मन्दिर में जाकर जल चढ़ाते थे और अपना विवाह होने की कामना करते थे।

"उनका विवाह सन् १९१२ में हुआ। विवाह होने पर जब हमारी माँ घर में आई तो पिताजी की आय में वृद्धि होने लगी। १९२० में मेरा जन्म हो चुका था, तब वे दिल्ली चले आए और यहाँ आते ही कूँचा पातीराम वाला मकान चार हज़ार में मोल ले लिया। इसके अनन्तर उन्होंने अपनी छोटी-सी आय में से, जो कभी भी नौ-दस रुपये से अधिक नहीं हुई थी, हमारी बहनों के विवाह किये, हमारे विवाह किये और तुम्हारे विवाह के लिए रुपया एकत्रित किया। दो लड़कों को अर्थात् मोहन और तुमको उच्च शिक्षा भी दी।

"कुलवन्त ! यह सब-कुछ उस काल में हुआ, जब व्यापारी स्वतन्त्र था और व्यापार पर किसी प्रकार का भी प्रतिबन्ध नहीं था। व्यापारी प्रसन्न था और ग्राहक सन्तुष्ट था और प्रत्येक को योग्यता के अनुसार उन्नति करने का अवसर मिल रहा था।

"देहात में निर्धनता होने पर भी जीवन सुखी था। एक बात और बताऊँ। उस समय यह तुम्हारा 'बर्थ कण्ट्रोल' नहीं था और आवश्यकता से अधिक अन्न पैदा होता था।

"मुसीबत का श्रीगणेश हुआ सन् १९२१ से। सूबों में कौंसिलें बनीं। वकीलों की बन आई और उन्होंने व्यापार में हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इसके पश्चात् कांग्रेस ने सेना और स्कूलों के बॉयकाट का आन्दोलन चलाया, मकानों पर धरने देने आरम्भ किये और महँगाई आरम्भ हो गई। एक बार जब किसी वस्तु का दाम बढ़ा, तो फिर कम नहीं हुआ। घी, जो

बारह आने से एक रुपये सेर तक था, महँगा होने लगा और अब हालत यह है कि आटा पौने दो सेर, घी छः-सात रुपये सेर, मूँग की दाल, जो रुपये की दस सेर होती थी, एक सेर मिलने लगी है।

"ज्यों-ज्यों सरकार स्वतन्त्र व्यापार पर प्रतिबन्ध लगाती जाती है, त्यों-त्यों महँगाई बढ़ती जाती है और जीवन दूभर होता जाता है। जन-साधारण पीड़ित है और वह तुम्हारे तानाशाहों को एक दिन यमलोक पहुँचा देगा।"

"परन्तु भैया! व्यापारी और अधिक लाभ कमाने के लिए पहले महँगाई करते हैं और सरकार फिर प्रतिबन्ध लगाती है। तुम तो उल्टी बात कर रहे हो।"

"नहीं कुलवन्त! व्यापारी महँगाई नहीं करता। स्वतन्त्र व्यापार के काल में तो वस्तुओं का अभाव होने से महँगाई होती थी और वस्तु का अभाव मिटा देने से यह समाप्त भी हो जाती थी। परन्तु प्रतिबन्ध के काल में अभाव मिट जाने पर भी महँगाई बनी रहती है। इसका कारण यह है कि नियन्त्रण-कार्य में लगाए गए बाबुओं को प्रतिबन्धों से लाभ होता है। वे बाबू वस्तुओं के उत्पादन में कुछ भी सहयोग नहीं देते। व्यापारी को लाभ होता है तो वह लाभांश को वस्तु के उत्पादन में लगाकर उसका अभाव दूर करने का यत्न करता है। सरकारी नियन्त्रण करने वालों को लाभ होता है तो वे उस लाभ को कोट-पतलून, केक-पेस्टरी, सिनेमा-थिएटर आदि में व्यय करते हैं। परिणाम यह होता है कि महँगाई तो बनी रहती है और धन व्यर्थ की बातों में व्यय हो जाता है।"

"जब सरकार व्यापार को अपने हाथ में लेगी, तब वह लाभ को पुनः व्यापार में लगाएगी और व्यापार लाभ के लिए नहीं, प्रत्युत जनता के हित के लिए करेगी।"

"कुलवन्त! सरकार का अर्थ तुम नहीं समझते। ये बड़े-बड़े अफ़सर ही तो सरकार हैं न? यही तो व्यापारी का स्थान लेंगे। ये बड़े-बड़े वेतन लेंगे और उस वेतन को व्यर्थ की बातों में उड़ा देंगे। इसके स्थान पर व्यापारी-लाभ तो इन वेतनधारियों से अधिक लेगा, परन्तु वह अपना लाभ पुनः व्यापार में लगाकर ग्राहक के लिए अधिक माल और मुकाबले में सस्ता देने

में व्यय करेगा।

"अपने बड़े भाई भगतराम की बात ही विचार लो। यदि कोई सरकारी अफ़सर इस प्रकार गृह-निर्माण का काम करने लगे तो वह कम-से-कम एक हज़ार रुपये मासिक से अधिक वेतन लेता और उस हज़ार को ऐश में उड़ा देता। भगतराम हज़ार रुपये से अधिक लाभ निकाल रहा है, परन्तु वह अपने ऊपर दो-तीन सौ रुपये व्यय कर, शेष धन पुनः मकान बनवाने में लगा रहा है। इससे मकान अधिक बनने से मकान के अभाव में कमी हो रही है।"

न जाने यह विवाद कब तक चलता रहता। भोजन का समय हो गया तो राधा दोनों को बुलाने आ गई। दोनों उठकर हाथ धो, खाने के कमरे में जा बैठे। कुन्तल भी अब उठकर रसोई के कामों में हाथ बँटाने लगी थी। वह बचत के उपाय सीखना चाहती थी।

राधा रोटी बना रही थी। कुन्तल परस रही थी। रमणी खाने की मेज़ साफ कर बरतन लगा रही थी। इस समय रामस्वरूप भी आ गया और इनके साथ भोजन करने बैठ गया। रामस्वरूप ने कुन्तल को पहली बार रसोईघर में काम करते देखा था। इससे वह विस्मय में कहने लगा, "रमणी! कुन्तल भाभी को अभी और आराम करना चाहिए?"

उत्तर कुन्तल ने दिया, "भैया! आपके भाई घर चलने की जल्दी मचा रहे हैं। मैं जाने से पूर्व आपके घर के सुप्रबन्ध का रहस्य जानना चाहती थी। बड़ी बहनजी से पूछा तो वे कहने लगीं कि यह सब 'करन' विद्या है। बातों से नहीं समझाई जा सकती। यह तो करके ही जानी जा सकती है। इसी कारण कुछ दिन और रहकर सीखना चाहती थी।"

राधा और रमणी तो हँसती रहीं, परन्तु जुगलकिशोर ने कह दिया, "कुलवन्त! बीबी के बिना उदास हो रहे हो तो तुम भी यहीं रह जाओ। क्या रखा है उस मकान में?"

"हज़ारों का सामान रखा है। कहीं चोरी हो गई तो?"

"तो ऐसा करो, कल सब सामान बेच डालो। अपने कपड़े तथा संदूक उठाकर यहाँ ले आओ।"

"बेचने से क्या मिलेगा? रुपये की चन्नी भी मुश्किल से मिलेगी।"

"जो कुछ भी मिलेगा, वह लाभ ही तो होगा। दोबारा सामान लेने की

आवश्यकता ही नहीं। यहाँ सब-कुछ है।"

"भैया ! आपका मतलब है अपना घर 'लिक्विडेट' कर दूँ ?"

"और क्या ? क्या इस घर से वह घर अधिक सुखप्रद है ? दो छोटे-छोटे कमरे, टट्टी-गुसलखाना कमरों से दूर, गर्मियों में भी बन्द कमर में सोना और फिर अपनी सारी कमाई मकान के भाड़े आदि पर व्यय कर देना, क्या यह उचित है ?"

"भैया ! अब तो आप कह रहे हैं, परन्तु जब मैं यहाँ आकर रहने लग गया तो तंग आ जाओगे और ग़रीब भाई को धक्के देकर घर से निकाल दोगे।"

"अभी तक तो यह हुआ नहीं। यह कल्पना निराधार है ?"

"आप तीनों भाई, तीनों बहनों से विवाहे गए हैं। आपका परस्पर व्यवहार सहनशीलता का बना हुआ है, परन्तु मेरी पत्नी बाहर की होने के कारण भाभियों को उतनी पसन्द नहीं हो सकती, जितनी उनकी अपनी बहनें हैं। इससे झगड़ा हो जाना स्वाभाविक है। यही विचार कर विवाह करते ही मैंने पृथक् मकान लिया था और अब भी यहाँ डेरा डालने में संकोच अनुभव करता हूँ।"

"मेरे व्यवहार में कोई छिद्र न देख अब भाभियों की नीयत पर सन्देह करने लगे हो। देखो कुलवन्त ! तुम यहीं रह जाओ। जब तुम हमारे व्यवहार में दोष देखो, तो पृथक् हो जाना। यदि दो वर्ष भी तुम हमारे पास रह गये तो इतनी बचत हो जाएगी कि फर्नीचर में होने वाली हानि पूरी होकर कुछ बच भी जाएगा।"

कुलवन्त युक्ति नहीं कर सका। फिर भी अपने संस्कारों के अधीन भाई के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सका।

परन्तु कुन्तल पर इसका प्रभाव बिलकुल विपरीत हुआ। वह समझ रही थी कि उसकी तथा उसके पति की जीवन-मीमांसा में कहीं दोष अवश्य है।

इस प्रकार विचार करने का मुख्य कारण उसका स्वार्थ ही था। अपनी शिक्षा-दीक्षा से वह स्वार्थ-हित के अतिरिक्त अन्य कोई हित स्वीकार नहीं करती थी। विवाह के समय उनको यह लगा था कि पृथक् मकान लेकर

रहने में उसको अधिक सुख मिलेगा। गर्भकाल की यंत्रणा को स्मरण कर और प्रसव-काल में अपनी जेठानियों की सेवा तथा सहानुभूति का विचार कर वह समझती थी कि इनके घर में रहने से उसके स्वार्थ की सिद्धि सुगम है।

इससे वह अपने घर लौट जाने में ढील कर रही थी। उसको एक बात स्पष्ट दिखाई दे रही थी कि घर में गृहिणी का कार्य और फिर ईमानदारी से स्कूल में अध्यापन कार्य दोनों एक साथ चलना अत्यन्त कष्टकारक हैं। अब स्कूल में जाकर छः घण्टे पढ़ाने का कार्य वह बहुत कठिन मानने लगी थी।

इस प्रकार के टालमटोल में दो मास के अवकाश के दिन भी व्यतीत हो गये। ज्यों-ज्यों अवकाश की समाप्ति का काल समीप आता जाता था, कुलवन्त का घर चलने का आग्रह प्रबल होता जाता था और कुन्तल आने वाली कठिनाई की कल्पना कर भयभीत होती जाती थी।

एक दिन अपने भय का प्रदर्शन उसने अपनी जेठानी रेवा से कर दिया। रेवा अपनी दोनों बहनों से अधिक पढ़ी हुई थी। इस कारण उसका दृष्टि-कोण अपनी बहनों से कुछ भिन्न था। वह समझती थी कि शरीर कोई ऐसी वस्तु नहीं, जिसकी ओर ध्यान देना पाप हो। और इसके लिए पति से कहना तथा सुख-सुविधा प्राप्त करना पत्नी का अधिकार है।

कुन्तल ने कहा, "रेवा बहन! क्या करूँ? वे कह रहे हैं कि मुझको छुट्टी समाप्त होने से पहले घर चलना चाहिए। चार-पाँच मास इस खुले स्थान पर और आप सब लोगों के साथ रहकर उस छोटे से मकान में जाने को अब चित्त नहीं करता।"

रेवा ने कह दिया, "तो उनसे कह दो कि वहाँ जाकर तुम बीमार पड़ जाओगी। साथ ही वहाँ जाने से तुमको नौकरी करनी पड़ेगी, जो अब बेबी के कारण तुम कर नहीं सकोगी। उनको तुम्हारी बात माननी पड़ेगी।"

"यदि वे न माने तो क्या करूँ?"

'मानेंगे क्यों नहीं? पुरुष सत्य ही बहुत स्वार्थी जीव होते हैं। तुम हठ करके कहो और फिर जेठजी तथा श्वसुरजी समझाएँगे तो बात बन जाएगी। जब तक तुम अपनी बात बलपूर्वक नहीं कहोगी, तब तक कोई क्या कह

सकेगा—मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त।"

एक अन्य भय कुन्तल के मन में समाया हुआ था। वह था पुनः गर्भ ठहर जाने का डर। इस कारण भी वह एक-आध वर्ष तक पति से पृथक् रहने में कल्याण मानती थी। इसके लिए उसका अन्तरात्मा अनायास ही अपना कार्य कर रही थी।

अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए उसने अपनी बड़ी जेठानी राधा से भी बात की। उसने कहा, "बहनजी! वे घर चलने के लिए ज़ोर दे रहे हैं। मुझको उनका अपने भाइयों से पृथक् रहना लाभकारी प्रतीत नहीं होता।"

"यह उनकी भूल है, कुन्तल! तुम उनको समझाओ। तुम्हारे जेठजी एक दिन कहते थे कि यदि कुलवन्त पृथक् काम करना चाहे तो हम इसमें भी उसकी सहायता कर सकते हैं। काम तो बहुत हैं। केवल खर्च कम करने की आवश्यकता है। बस काम चल जाएगा।"

"मैं विचार कर रही हूँ कि उनको अन्तिम बार कह दूँ कि मैं यहीं रहूँगी और उनको भी यहाँ आकर रहना चाहिए। आपकी क्या राय है?"

"होना तो यही चाहिए कि अब तुम नौकरी से त्याग-पत्र दे दो। तुम दोनों यहाँ आकर रहो। अपनी पूर्ण सम्पत्ति, फ़र्नीचर इत्यादि सामान बेचकर तथा प्रॉविडेंट फंड का रुपया लेकर उससे कुछ व्यापार आरम्भ कर दो। तुम्हारे तीनों जेठ मिलकर सहायता करेंगे और काम निश्चित ही चल पड़ेगा।"

उस दिन जब कुलवन्त आया तो कुन्तल ने अपने मन की बात कह दी। उसने कहा, "मुझको यहाँ रहने में अपना सुख और अपने परिवार की भलाई दिखाई देती है। इस कारण मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी। आप अपना सामान बेचकर मकान छोड़कर यहाँ चले आइए।"

"मैं यहाँ नहीं आऊँगा।"

'मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"मैं अब नौकरी नहीं करूँगी। मुझको उसमें कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं होता। जब नौकरी नहीं करनी तो पृथक् रहने से निर्वाह करने में कठिनाई होगी।"

"पर मैं यहाँ भाइयों के घर में कैसे रह सकता हूँ? रोटी का खर्चा, मकान का किराया आदि लेने की इच्छा तो वे भी करेंगे ही।"

"यह सब बाद में तय कर लेंगे।"

कुलवन्त ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। कुन्तल ने समझा कि वह मान गया है।

अगले दिन उसने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया। नोटिस पीरियड के लिए एक मास के लिए उसने स्कूल में जाना आरम्भ कर दिया। अपनी जेठानियों के पास वह बेबी को छोड़, ड्यूटी भुगताने लगी।

इस एक मास के काल में एक-दो बार ही कुलवन्त आया। उसने पुनः कुन्तल को घर चलने के लिए कहा, परन्तु कुन्तल ने इनकार कर दिया। इन्हीं दिनों एक बार जुगलकिशोर की कुलवन्त से बात हो गई। जुगल रविवार होने के कारण घर पर ही था जब कुलवन्त आया। उसने उसे अपने पास बिठाकर पूछ लिया, "कुलवन्त, इस समय तुम्हारे पास कितना रुपया बैंक में जमा है?"

"यही कोई चार-पाँच सौ।"

"मोहन एक लायसेंस तुम्हारे नाम खरीदने को कह रहा है। लाइसेंस पाँच हज़ार का है। तीन हज़ार ऊपर से देना होगा। यदि तुम तीन हज़ार का प्रबन्ध कर सको तो सौदा कर लिया जाय। मुझे विश्वास है कि इस लाइसेंस में तुम्हें आठ-नौ हज़ार बच सकता है। लायसेंस खरीदकर माल का आर्डर दे देंगे और तीन महीने में वह माल आ जाएगा। यहाँ हालत ऐसी है कि माल आते ही बिकता है।"

कुलवन्त एक क्षण तक तो विस्मित-सा मुख देखता रह गया। फिर पूछने लगा, "आपने मेरी स्वीकृति के बिना यह तय क्यों किया? न तो मेरे पास रुपया है और न मैं इस प्रकार के 'मिडिलमैन' का काम पसन्द करता हूँ।"

"मिडलमैन से क्या मतलब?"

"यही जो करे-धरे कुछ नहीं और लाभ चोखा कमाये।"

"माल मँगवाकर तुम बेचने का परिश्रम तो करोगे ही। मैं समझता हूँ कि यदि तुम अभी से एक घण्टा शाम को बाजार आना शुरू कर दोगे तो

अच्छा है। बाज़ार का ज्ञान हो जाएगा।"

"पर भैया! दो-तीन महीने में आठ-नौ हज़ार का लाभ? यह तो हराम का होगा।"

"भाई! तुम्हारी बीवी ने कहा था कि तुम यह कर लोगे।"

कुलवन्त इस समय तो चुप रहा। परन्तु वह क्रोध से लाल-पीला होने लगा। उसने निश्चय कर लिया कि यदि कुन्तल अपने घर नहीं चलेगी तो वह भी उससे मिलना बन्द कर देगा।

जब जुगलकिशोर ने कुलवन्त की बात कुन्तल को बताई तो कुन्तल ने कह दिया, "मेरा प्रॉविडेंट फण्ड का डेढ़ हज़ार मिलने वाला है। पाँच सौ के लगभग बैंक में हैं और उनको फर्नीचर बेचने के लिए कह दूँगी। सब मिल-मिलाकर तीन हज़ार हो जाएगा। यदि कुछ कम रहा तो आप उधार दे दीजिएगा। यदि ये माल बेचने के लिए बाज़ार नहीं जाएँगे तो मैं चली जाया करूँगी। आप यह लाइसेंस का सौदा कर लीजिए।"

यद्यपि यह प्रबन्ध जुगलकिशोर को पसन्द नहीं था, फिर भी उसने मोहन को लायसेंस का सौदा करने के लिए कह दिया और साथ ही कहा, "एक रजिस्टर पर सारा हिसाब-किताब लिखते जाओ। बाद में बात करेंगे।"

कुन्तल को स्कूल से छुट्टी मिली, परन्तु कुलवन्त न तो उससे मिलने के लिए आया और न ही उससे कहने आया कि घर चलो।

इस प्रकार दो मास व्यतीत हो गए। कुलवन्त के नाम खरीदे गए लाइसेंस का आर्डर भेजा जा चुका था और माल जर्मनी से रवाना भी हो चुका था। बिल वग़ैरह आ चुके थे। परन्तु इस बीच एक बार भी कुलवन्त कुन्तल का समाचार लेने नहीं आया।

कुन्तल अब स्कूल नहीं जाती थी। कुछ हिसाब-किताब में गड़बड़ होने के कारण प्राविडेंट फण्ड का रुपया उसको नहीं मिल सका था और लाइसेंस खरीदने के लिए तीन हज़ार रुपया जुगलकिशोर ने अपने पास से दिया था।

मोहन का विचार था कि कुलवन्त को यहाँ आए बहुत दिन हो चुके हैं। एक-दो बार उसके मकान पर जाकर उसकी टोह अवश्य लेनी चाहिए। इस

विचार के अनुरूप एक दिन दफ़्तर के समय से पूर्व ही कुन्तल पटेल नगर जा पहुँची। घर को ताला लगा था। पड़ोसियों से पता करने पर मालूम हुआ कि ताला लगे पन्द्रह-बीस दिन हो चुके हैं। मालिक-मकान से पता करने पर उसने बताया कि लगभग पन्द्रह दिन हुए वह किराया देने आया था और कह गया था कि वह दौरे पर जा रहा है। पता नहीं कितने दिन लगें। अगले महीने का किराया वह वहाँ से ही मनिआॅर्डर द्वारा भेज देगा।

यह तो ठीक था कि कुलवन्त दफ़्तर के काम से गया है, परन्तु उसका अपनी पत्नी तक को न बताकर जाना अत्यन्त विस्मयकारक था। कुन्तल का विचार था कि उसका पति उससे रुष्ट अवश्य है, परन्तु इस रुष्टता में कोई कारण नहीं होना चाहिए। साथ ही वह भी विचार करती थी कि वह अपने जेठों के घर रह रही है तो उनकी रुचि और सहानुभूति अपने परिवार के प्रति उत्पन्न कर कुछ अच्छा ही कर रही है।

जब उसने घर आकर यह सूचना अपने जेठों को दी तो जुगलकिशोर ने कॉलटैक्स कम्पनी में टेलीफोन कर कुलवन्त के बाहर जाने के विषय में जानकारी प्राप्त कर ली। वहाँ से सूचना मिली थी कि कुलवन्त को कम्पनी के सेन्ट्रल ज़ोन में चीफ़ इन्स्पेक्टर नियुक्त कर भेज दिया गया है। उसका वेतन चार सौ पचास रुपये हो गया है और हैडक्वार्टर नागपुर बना है।

यह सूचना प्रसन्नताजनक तो थी, परन्तु उसका अपनी पत्नी से बिना मिले चला जाना सत्य ही चिन्ताजनक था। नागपुर में कम्पनी के पते पर कुन्तल ने पत्र लिख दिया।

पत्र भेजा गया, परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं आया। इस पर कुन्तल ने नागपुर जाने का फैसला कर लिया।

कुलवन्त को नागपुर गये दो मास हो चुके थे। जब कुन्तल वहाँ पहुँची तो रायल होटल में ठहरकर तथा स्नान-ध्यान कर वह कुलवन्तराय का पता करने के लिए कम्पनी के कार्यालय में पहुँच गई।

यहाँ से पता लगा कि कुलवन्तराय दौरे पर गये हुए हैं और चार-पाँच दिन तक लौटने वाले हैं। कुन्तल ने उसके घर का पता पूछा और जिस दिन कुलवन्त के आने की सूचना थी, कुन्तल उस पते पर जा पहुँची।

एक बड़ी-सी बिल्डिंग में दूसरी मंज़िल पर वह फ्लैट था, जिसका पता

कम्पनी के का.र्यालय से मिला था। जब कुन्तल उस फ़्लैट के सम्मुख जा खड़ी हुई तो कुन्तल ने देखा कि बैठक का द्वार खुला है और एक स्त्री भीतर किसी को डाँट रही है। स्त्री की आवाज़ सुन कुन्तल ने समझा कि वह नम्बर भूल गई है। फिर भी उसने यही उचित समझा कि वहाँ से मालूम कर ले कि आस-पास कहीं मिस्टर कुलवन्तराय रहते हैं। उसी समय उस फ़्लैट से एक नौकर हाथ में थैला लिये हुए निकला और बाज़ार की ओर जाने लगा। कुन्तल ने उसी से पूछ लिया, "यहाँ कोई बाबू कुलवन्तराय रहते हैं?

"हाँ, उनका घर यही है। बाबू साहब दौरे पर गये हैं। मालकिन घर पर हैं।"

"मालकिन?" कुन्तल के पाँव-तले से मिट्टी निकल गई। वह विस्मय में खड़ी रह गई। नौकर भी विस्मय में उसका मुख देखने लगा। फिर उसने पूछ लिया, "मालकिन से मिलना हो तो भीतर आइए। मैं उनको बुला देता हूँ।"

"तुम जाओ। मैं स्वयं मिल लूँगी।"

नौकर विस्मय करता हुआ चला गया। कुन्तल ने अपना चित्त स्थिर किया। इसमें उसको दो-चार मिनट लग गए। तब तक वह बाहर ही खड़ी रही। पश्चात् उसने दरवाजा थपथपा दिया।

एक महाराष्ट्रियन युवती बाहर आई। उसने कुन्तल को द्वार पर खड़े देख पूछ लिया, "आप किसको चाहती हैं?"

"बाबू कुलवन्तराय यहाँ रहते हैं?"

"हाँ। आप कौन हैं?"

"मैं उनकी सम्बन्धी हूँ। दिल्ली से आई हूँ।"

"आइये, बैठिए। वे आज आने वाले थे, परन्तु सुबह ही उनका तार आया है कि वे दो दिन बाद आएँगे।"

"वे आपके पति हैं क्या?"

युवती चुप रही। उसके मुख पर हल्क-सी सुर्खी ने कुलवन्त के प्रश्न का उत्तर दे दिया। कुन्तल ने कह दिया, "मैं नागपुर किसी काम से आई थी। विचार आया कि उनसे मिलती जाऊँ।"

"आइए, बैठिए न! आप चाय पिएँगी?"

"नहीं, अभी मैं तीन-चार दिन यहाँ हूँ। फिर मिलने आऊँगी।"

"कहाँ ठहरी हैं ?"

"रायल होटल कमरा नं० ७ में। मेरा नाम कुन्तल है। तो वे परसों तक आ जाएँगे ?"

"लिखा तो यही है।"

"बाई द वे, आपका विवाह कब हुआ ?"

"एक महीने से ऊपर हो चुका है।"

"क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ ?"

"मलिन्द।"

"अच्छा मलिन्द बहन ! यदि मैं एकाएक न चली गई तो परसों मिलूँगी, अन्यथा उनको मेरी नमस्कार कह देना।"

इतना कह कुन्तल लौट पड़ी। इतनी देर से उसने अपने पर नियन्त्रण रखा हुआ था और उसे भय था कि कहीं उसका भेद न खुल जाए। इसलिए घूमते ही वह धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतर गई। मलिन्द उसको जाते देख खड़ी रह गई।

होटल में पहुँच कुन्तल अपने कमरे में जा, दरवाज़ा भीतर से बन्द कर बहुत रोई। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे ? जीवन का सहारा ही समाप्त हो गया था। और तो और, अब नौकरी भी नहीं रही थी और खाने के लिए एक मुख और आ गया था।

कुन्तल समझ गई थी कि इस परिस्थिति में कुलवन्त अब उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा। तो फिर वह कहाँ रहेगी ? क्या उसके भाई-भावज अब उसको रखना पसन्द करेंगे ? जब तक वह कुलवन्त की स्त्री थी, कुलवन्त के भाई उसका भी आदर करते थे, परन्तु अब जब कुलवन्त उसे छोड़ देगा, उसके भाई उससे सम्बन्ध रखेंगे और उसको सहारा देंगे क्या ?"

आज उसने भोजन नहीं किया। उसकी खाने में रुचि नहीं रही। मध्याह्नोत्तर दो बजे उसका चित्त स्थिर हुआ तो उसने एक पत्र में सब वृत्तान्त तथा मलिन्द से उसकी भेंट लिखकर दिल्ली भेज दिया। पत्र में उसने यह भी लिख दिया कि वह परसों उनसे भेंट करने का प्रयत्न करेगी और भेंट के उपरान्त दिल्ली लौट आएगी। पत्र लिखकर उसने डाक में डाल दिया।

सायंकाल कुछ खाकर वह वैसे ही लेटी रही। अब वह विचार कर रही थी कि अपने पति से जब मिलेगी तो क्या कहेगी और वह उसको क्या सफ़ाई देगा?

वह विचार करने लगी थी कि उसका कुलवन्त से विवाह एक महान भूल थी। परन्तु यह भूल अब वह कैसे सुधार सकती है। बच्ची का वह क्या करे? अपने जेठ-जेठानियों को क्या कहेगी? वे इसमें किसका दोष मानेंगे? क्या इसमें उसका दोष समझ अब उसको घर से निकाल नहीं देंगे?

इस प्रकार अनेक सम्भावनाओं तथा उनके समाधानों पर और फिर समाधानों से उत्पन्न नई समस्याओं पर विचार करती हुई वह रात-भर करवटें बदलती रही। वह एक पल भी सो नहीं सकी।

प्रातः उसने शौच आदि से निवृत्त हो नाश्ता किया और नाश्ता कर पुनः विस्तर में जाकर लेट रही। अब उसको नींद आ गई। पिछले दिन की दिमाग की थकावट के कारण जो बोझा पड़ा था, उसके दूर होने से उसे खूब गहरी नींद आई और वह दोपहर तक सोती रही।

उठने पर उसका चित्त काफ़ी हलका हो चुका था। उसने भोजन किया और घूमने निकल गई।

अगले दिन वह विचार करने लगी कि वह अपने पति से मिलने जाए अथवा नहीं। उसके मन में आया कि उसको उसकी नई पत्नी के सम्मुख नहीं जाना चाहिए। अपना पता वह मलिन्द को दे आई थी और कुलवन्त को स्वयं उसके पास आना चाहिए।

कुलवन्त उससे मिलने आया, परन्तु लंच के समय। वह भयभीत था। उसने सात नम्बर के कमरे का द्वार खटखटाया तो कुन्तल समझ गई कि वह आया है। उसने द्वार खोला तो बिना किसी प्रकार के अभिवादन के कुलवन्त भीतर प्रवेश कर तथा द्वार बन्द कर कहने लगा, "तो तुम आ गई हो?"

कुन्तल नहीं बोली। वह अपने पलंग पर बैठ गई। कुलवन्त ने कुरसी पर बैठते हुए कहा, "कब आई हो?"

कुन्तल की आँखें डबडबा आईं। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। उसे चुप देख कुलवन्त ने पुनः कहा, "तुमने देख लिया है कि मैंने

विवाह कर लिया है ?"

इसमें कुछ उत्तर देने को नहीं था। कुलवन्त ने आगे कहा, "वह तुमसे अधिक सुन्दर है, परन्तु तुम अधिक पढ़ी-लिखी और समझदार हो।"

कुन्तल चुप रही।

"अब मेरा वेतन बढ़ गया है। वेतन से अधिक मेरा भत्ता ही बन जाता है। इससे मैं तुम्हारा खर्च भी दे सकता हूँ। बताओ क्या दूँ ?"

जब कुन्तल ने इसका भी कोई उत्तर नहीं दिया तो कुलवन्त ने जेब से नोटों का बण्डल निकाला और उसे मेज़ पर रखकर खड़ा हो गया। खड़े-खड़े उसने कहा, "कुन्तल! तुम अब दिल्ली लौट जाओ। अगले मास मैं वहाँ आऊँगा और तीन रात तुम्हारे पास रहूँगा। तुम वहाँ रहोगी और वह यहाँ रहेगी। देखो, यह रहस्य किसी को पता न चले। मैं इसका प्रतिकार तुमको दूँगा।" इतना कह वह द्वार खोलकर चला गया।

कुन्तल के अविरल आँसू बह रहे थे। वह हताश हो लेट गई।

अचानक उसकी समझ में आया कि अब यहाँ रहने में कोई प्रयोजन नहीं रहा। उसने घड़ी में समय देखा। गाड़ी में अभी समय था। वह कमरे से बाहर निकल आई और बैरे से बोली, "बैरा! बिल ले आओ! और देखो एक रिक्शा भी बुला लो। मुझे अभी जाना है।"

कुन्तल ने अपना सूटकेस ठीक किया तथा बिस्तर लपेटने लगी। जब तैयार हो गई तो उसने मेज़ पर रखे नोट उठाकर गिन डाले। दस-दस के पचास नोट थे। कुन्तल ने कुछ विचार कर उनको अपने पर्स में डाल लिया।

"देखो कुन्तल! तुम कहो तो मैं पुलिस में रिपोर्ट कर दूँ। उसने तुम्हारे होते हुए दूसरा विवाह किया है, यह जुर्म है।"

जुगलकिशोर कुन्तल की पूर्णकथा सुनकर उससे पूछ रहा था। परन्तु कुन्तल ने सिर हिला दिया। उसने कहा, "जी नहीं! इससे मुझको क्या लाभ होगा? यह तो उनकी नई पत्नी करना चाहे तो कर सकती है। मैं नहीं करूँगी।"

"तो आराम से बैठो और परमात्मा का भजन करो। वही इस दुस्तर सागर से पार करने की सामर्थ्य रखता है।"

कुन्तल इस परिस्थिति में अपनी सुख-सुविधा की बात का विचार कर रही थी। वह सोच रही थी कि जब तक वह तलाक के लिए प्रार्थना न करे और प्रार्थना स्वीकार न हो जाय, वह दूसरा विवाह नहीं कर सकती। तलाक स्वीकार होने में तो कोई सन्देह नहीं था, परन्तु तलाक के पश्चात् पुनर्विवाह हो सकेगा क्या ? लड़की के गोद में रहते हुए भला कौन पढ़ा-लिखा आदमी उससे विवाह करना स्वीकार करेगा ?

साथ ही तलाक के समय जहाँ कुलवन्त से झगड़ा होगा, वहाँ वह अपने जेठ-जेठानियों तथा श्वसुर को भी नाराज़ करेगी। वह समझती थी कि तलाक के मुकद्दमे में उसके दूसरे विवाह की भी बात प्रकट होगी और कुलवन्त को दण्ड मिलेगा। अपने भाई को कैद होते देख जेठ उसको घर पर नहीं रख सकेंगे।

कुन्तल के नागपुर से वापस आने पर एक विशेष बात और हुई थी। उसका श्वसुर प्रतिदिन आकर उसका स्वास्थ्य-समाचार पूछने लगा था और बेबी को गोद में उठाकर घुमाने ले जाने लगा। दूसरे-तीसरे दिन वह बेबी के हाथ में पाँच रुपये का नोट भी देने लगा था।

कुन्तल अनुभव करने लगी थी कि कुलवन्त के भाई-भावज तथा पिता कुलवन्त के दूसरे विवाह के पश्चात् उसका आदर पहले से अधिक करने लगे हैं और उसकी सेवा में तत्पर रहने लगे हैं। इससे उसके मन में विश्वास बैठ गया था कि उसके अपने पति के विरुद्ध रिपोर्ट न करने पर ही ससुराल वाले उसका अधिक सम्मान करते हैं।

एक दिन उनके व्यवहार पर अनायास ही विवेचना हो गई। बरकतराय आया तो कुन्तल से कहने लगा, "बहू ! मेरे मूर्ख पुत्र का एक पत्र आया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी समझ में आ गया है कि उसने कानून की दृष्टि से अपराध किया है। उसको भय है कि कहीं तुम अदालत में रिपोर्ट न कर दो। इससे एक ओर तो उसको दण्ड मिल जाएगा और दूसरी ओर उसकी दूसरी पत्नी को विदित हो जाएगा कि उसका पहले ही विवाह हो चुका है। उसकी नौकरी तो जाएगी ही, साथ ही वह पत्नी भी उसको छोड़-कर चली जाएगी। इस कारण उसने लिखा है कि हम तुमको ले-देकर चुप

करा दें।" इतना कह बरकतराय खिलखिलाकर हँसने लगा। उसने फिर कहा, "वह मूर्ख प्रत्येक वस्तु का मूल्य रुपयों में आँकता है। पति-पत्नी का सम्बन्ध भी उसके लिए एक आर्थिक समस्या है। तभी तो वह तुमको नौकरी करने के लिए विवश करता रहा है।

"देखो बहू ! संसार में धन बहुत बड़ी चीज़ है। परन्तु धन से भी बड़ी एक अन्य चीज़ है—वह है धर्म। विवाह एक धर्म-कार्य है। उसका पालन रुपये-पैसे के आवागमन से ऊपर है।"

कुन्तल सामने बैठी सुनती रही। वह मन में विचार करती थी कि उसने अभी तक पुलिस में रिपोर्ट नहीं की। क्या यह विवाह-सम्बन्ध को धर्म का कार्य समझने के कारण है, अथवा इसमें भी कोई उसका स्वार्थ है ? वह समझ रही थी कि दो सर्वथा भिन्न अनुमान लगाए जा सकते हैं, एक ही कार्य के। वह अपने मन में तो अपने व्यवहार के आधार में स्वार्थभाव ही समझती थी।

फिर भी उसकी समझ में यही आया कि उसका श्वसुर और जेठ-जेठानियाँ उसके व्यवहार को त्याग और तपस्या का प्रतीक समझते हैं। इसीसे उसका आदर बढ़ गया है।

एक दिन कुलवन्त दिल्ली आ पहुँचा। उसको नागपुर गए चार मास से ऊपर हो चुके थे। वह मकान का भाड़ा अभी तक दे रहा था। कुलवन्त अकेला आया था। उसकी नई पत्नी उसके साथ नहीं थी।

स्टेशन से वह सीधा अपने मकान पटेलनगर में गया। मकान खोलकर उसको झाड़-फूँककर वह उसमें आराम करने लगा। दोपहर पश्चात् वह उठा और होटल में भोजन कर कुन्तल से मिलने दरियागंज जा पहुँचा।

उसे देख बच्चे तो उसको घेरकर खड़े हो गए। उसकी भाभियों ने केवल राम-राम की और मुस्कराकर अपने-अपने काम में लग गईं। उसके भाई सभी काम पर जा चुके थे।

कुन्तल को बच्चों के शोर से विदित हो गया था कि उसका पति आया है। परन्तु वह अभिवादन करने अथवा उससे मिलने के लिए अपने कमरे से बाहर नहीं निकली।

कुलवन्त उसके कमरे में आया तो भी कुन्तल पलंग पर लेटी रही।

उसका मुख दीवार की ओर था। उसकी बच्ची खटोले पर सो रही थी।

कुलवन्त ने आवाज़ दी, "कुन्तल !"

कुन्तल हिली नहीं। कुलवन्त ने उसके कन्धे को पकड़कर हिलाया। उसका अनुमान था कि कुन्तल सो रही है। परन्तु हाथ लगते ही कुन्तल तमककर उठ बैठी और बोली, "मैं सो नहीं रही। मुझको मत छुओ।"

"क्यों ?"

"इस कारण कि आपने अपने वचनों का पालन नहीं किया ?"

"मैं समझता हूँ कि वचन-भंग पहले तुमने किया है।"

"उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। भला क्या वचन-भंग किया था मैंने ?"

"देखो कुन्तल ! जब हमारा विवाह हुआ था तो इसका स्पष्ट अर्थ था कि हममें शारीरिक सम्बन्ध बन रहा है और इस शारीरिक सम्बन्ध से कुछ उत्तरदायित्व हमारे बढ़ रहे हैं। हम जानते थे कि इन उत्तरदायित्वों को निभाने के लिए धन की आवश्यकता पड़ेगी। हमने निश्चय किया था कि हम दोनों परिश्रम कर धनोपार्जन करेंगे।

"तुमने परिश्रम करना छोड़ दिया और मेरे धनी सम्बन्धियों की चाटुकारी करनी आरम्भ कर दी। मैं विचार करने लगा था कि क्या यह चाटुकारी धन की उपलब्धि के लिए है अथवा उस शारीरिक सुख की उपलब्धि के लिए, जिसके लिए मेरा तुमसे सम्बन्ध बना था ?

"हम मानते हैं कि मनुष्य-समाज जो भी करता है, उसकी प्रेरणा में उसकी अपनी निजी सुख-सुविधा ही आधार है—उपलब्धि चाहे शारीरिक सुख की हो चाहे साधनों की हो, जिनसे वह शारीरिक सुख मिल सके। जब मेरे भाई तुममें रुचि लेने लग गए और तुमको धनी बनाने में संलग्न हो गए, तो मुझको विश्वास हो गया था कि तुम मेरे स्थान पर उनसे शारीरिक सम्बन्ध बनाने में अधिक सुख अनुभव करती हो।"

कुन्तल ने कुलवन्त की यह विवेचना सुनी तो वह स्तब्ध रह गई। वैसे सिद्धान्त रूप में वह भी यही समझती थी कि मनुष्य सुखों की उपलब्धि में लगा रहता है, परन्तु अभी तक वह समझ नहीं सकी थी कि उसके जेठ तथा जेठानियों को उसकी सहायता करके कौन-सा सुख मिल रहा है। वे न

केवल उसकी छोटी-मोटी आवश्यकताओं का ध्यान रखते थे, प्रत्युत उसके नाम से व्यापार कर उसको लाभ दे रहे थे।

वह लाइसेंस, जो कुलवन्त के नाम खरीदा गया था, उसका माल आकर बिक चुका था। लाइसेंस खरीदने में तीन हज़ार रुपया देना पड़ा था और फिर माल मँगवाने में पाँच हज़ार से ऊपर लगा था। कुन्तल ने एक पाई भी नहीं दी थी। सारा रुपया उसके जेठ जुगलकिशोर ने दिया था। माल जब बाज़ार में बिका तो उससे नौ हज़ार का लाभ हुआ। जुगलकिशोर ने लाभ की पाई-पाई कुन्तल को दे दी थी और अब उस रुपये से कोई और लाइसेंस खरीदने की बात चल रही थी।

कुन्तल विचार करती थी कि इसमें उसके जेठों का क्या स्वार्थ हो सकता है। वह जानती थी कि जो कारण उसके पति ने समझा है, वह सत्य नहीं है। उसके जेठों ने कभी भी उसकी ओर कुदृष्टि नहीं की थी।

कुलवन्त के नये विवाह के पश्चात् उनकी उसके प्रति सहानुभूति भी कैसे उनके किसी स्वार्थ की प्रतीक हो सकती है, वह समझ नहीं सकी थी। अपने मूर्ख भाई को जेल से बचाने में उनका क्या हित सिद्ध हो रहा है, वह यह भी समझी नहीं थी।

पिछले चार मास के काल में उसके विचारों में परिवर्तन आ रहा था। उसको अपनी पूर्व की धारणाओं पर सन्देह होने लगा था। फिर भी उसने अपनी जेठ-जेठानियों की धारणाओं को स्वीकार नहीं किया था। उसके श्वसुर ने कहा था कि विवाह एक धर्म-कार्य है। वह अभी तक समझी नहीं थी कि यौन-कार्य, धर्म-कार्य कैसे हो गया। वह इसको विवशता मानती थी और समझती थी कि इस विवशता को समाज ने अपने कृत्रिम बन्धनों से और भी कठिन कर रखा था।

इस पर भी अपने पति के इस लाँछन को मिथ्या मानती हुई भी कैसे इसे स्वीकार कर सकती थी। उसने कह दिया, "मैं समझती हूँ कि इस धारणा में, कि मनुष्य के सभी कार्य निजी सुख को आधार बनाकर किये जाते हैं, कहीं दोष है। मुझको यह भली-भाँति विदित है कि आपके भाइयों का मुझे व्यापार में लाभ देना तथा मेरे साथ सहानुभूति रखना, उनके किसी स्वार्थ का सूचक नहीं, प्रत्युत उनके त्याग का सूचक है। यह त्याग किसी

शारीरिक सुख के लिए नहीं है प्रत्युत आत्म-तृप्ति के लिए है, ऐसा वे कहते हैं।"

"सब मिथ्या है। यदि अभी नहीं तो शीघ्र ही तुम मेरे कथन का अनुभव करोगी। खैर, कुछ भी हो। यह तुम्हारे देखने की बात है कि तुम किस-किसके सुख की सामग्री बनना चाहती हो।

"मैं तो केवल यह जानने आया हूँ कि तुम मेरे विषय में क्या करने जा रही हो?"

"किस विषय में?"

"मेरे नये विवाह के विषय में। मैं जब नागपुर पहुँचा तो वहाँ के कार्यालय का अकाउन्टेंट मुझको अपने घर ले गया। यह केवल मेरी उस अपरिचित नगर में सहायता के लिए था। जब तक मेरे रहने योग्य मकान न मिले, वह मुझको अपने घर पर रखना चाहता था। वहाँ मलिन्द के दर्शन हुए। वह उसकी छोटी बहन है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह अपनी भावज—अकाउन्टेंट की पत्नी—से तंग आई हुई थी और मैं अपनी पत्नी से चिर-वियोग के कारण अतृप्त अवस्था में था। हम एक-दूसरे को पा गए और शीघ्र ही हमारा सम्बन्ध बन गया। तदनन्तर मुझको यह झूठ बोलना पड़ा कि मैं अविवाहित हूँ। इस प्रकार हमारा विवाह हो गया।

"अभी तक सब ठीक है। वहाँ किसी को किंचितमात्र भी सन्देह नहीं है कि मेरा पहला विवाह हो चुका है और मैं दूसरा विवाह करने का अपराधी हूँ। मलिन्द मुझसे हर प्रकार से सन्तुष्ट है। मैं उसको यहाँ नहीं लाया। मैंने बहाना बनाया है कि मेरे घर वाले जाति से बाहर विवाह कर लेने के कारण मुझसे नाराज़ हैं और मुझसे सम्बन्ध नहीं रखना चाहते।"

"तो फिर अब आप मुझसे क्या चाहते हैं?" कुन्तल ने पूछा।

"मैं तो तुमसे पूछ रहा हूँ कि तुम मुझसे क्या चाहती हो?"

"मैं कुछ नहीं चाहती। मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए।"

"मुझे तुमसे एक आश्वासन चाहिए। मैं चाहता हूँ कि मेरे दूसरा विवाह कर लेने की बात किसी को विदित न हो। इस आश्वासन की मैं कीमत देने को तैयार हूँ।"

"क्या कीमत देंगे आप?"

"यदि यह अस्वाभाविक कानून न बना होता तो मैं प्रत्यक्ष में दोनों पत्नियों को लेकर रहने का यत्न करता। जो बात अब मैं प्रत्यक्ष में नहीं कर सकता, अप्रत्यक्ष रूप में करने को तैयार हूँ। मैं आर्थिक और शारीरिक दृष्टि से तुमको बराबर रख सकता हूँ।"

"अर्थात् मेरे साथ सम्बन्ध रखना आप उस आश्वासन का मूल्य समझते हैं। और यदि मैं यह असत्य व्यवहार न अपनाऊँ तो आप मुझसे सम्बन्ध रखना नहीं चाहेंगे?"

"तब तुमसे द्वेष होगा। फिर लेन-देन की बात कैसे हो सकती है?"

"तो ठीक है। मुझको इस आश्वासन के मूल्य की आवश्यकता नहीं है। मैं आपको पुलिस के हवाले नहीं करूँगी। इसका निर्णय आपके कुछ रुपयों और एक-दो रात के प्यार से नहीं होगा। इसके निर्णय का आधार कुछ और होगा। जब तक वह आधार बना है, आप निश्चिन्त होकर मेरी सौत के साथ विचरिए।

"अब आप जा सकते हैं। मुझे इस समय कुछ ऐसा लग रहा है कि मैं आपकी संगति में दुःख और क्लेश अनुभव कर रही हूँ।"

"कुन्तल! मैं तो तुमको घर ले चलने के लिए आया था। मुझे तीन दिन यहाँ रहना है। तब तक तुम्हारी संगति मिल जाती तो दोनों के लाभ की बात होती।"

कुन्तल जैसी पहले थी, उस अवस्था में उसके लिए यह एक बहुत बड़ा प्रलोभन होता, परन्तु अब स्थिति बदल चुकी थी। पहले कुलवन्त कहा करता था कि वह कुन्तल से बहुत सुख पा रहा है और इसके लिए वह उसका अत्यन्त आभारी है। अब उसने कहा था कि कुन्तल को सुख देने के लिए वह तीन दिन के लिए अपनी पत्नी के सम्मुख झूठ बोलकर आया है। यह वह उस आश्वासन के बदले में कर रहा है जो वह उससे माँग रहा था कि वह उसकी अवस्था किसी के सम्मुख प्रकट न करे। कुन्तल इस अवस्था को अपने लिए अपमानजनक समझती थी। इस कारण वह क्रोधित हो उठी। उसने उठते हुए कहा, "मैं अब आपसे सम्बन्ध रखना नहीं चाहती।" इतना कह वह कमरे से बाहर निकल गई।

कुन्तल अपने कमरे से निकली तो बड़ी जेठानी के कमरे में चली गई।

कुलवन्त इसका अभिप्राय समझने का यत्न करता हुआ वहाँ बैठा रहा। कुन्तल उससे घृणा प्रकट कर गई थी, इससे उसे भी क्रोध चढ़ आया था।

अचानक उसकी दृष्टि खटोले पर सो रही बेबी पर पड़ी। वह उठकर उसको देखने लगा। बेबी बिलकुल कुन्तल की प्रतिलिपि थी। इससे कुलवन्त को उस पर भी क्रोध आने लगा। एक क्षण के लिए उसके मन में आया कि कुन्तल का प्रतिकार इससे ले ले। इसका गला ही घोंट दे। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे भय समा गया कि हत्या के अपराध में पकड़ा गया तो फाँसी का दण्ड भोगना पड़ा।

वह भी कमरे से बाहर निकल आया और बड़ी भाभी के कमरे के बाहर खड़ा होकर बोला, "भाभी ! मैं चला।"

"बैठो कुलवन्त ! तुम्हारे भाई आने ही वाले होंगे। भोजन करके जाना।"

"भाभी ! आया तो भैया से मिलने ही था, परन्तु···।"

"परन्तु-वरन्तु छोड़ो। बैठक में बैठो, अभी भैया आते ही होंगे।"

कुलवन्त भी यही चाहता था। वह किसी के कहने की प्रतीक्षा में था। अतः भाभी के कहते ही वह बैठक में जाकर प्रतीक्षा करने लगा।

कुन्तल अपनी जेठानी के पास बैठी रो रही थी। राधा उसे सान्त्वना दे रही थी। उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "कुन्तल ! क्या बात है ? रो क्यों रही हो ?"

"नहीं जानती क्या बात है। फिर भी रोना रुकता ही नहीं। मुझको कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं अपने जीवन में एक महान् भूल कर बैठी हूँ और उस भूल का फल भोग रही हूँ।"

"परन्तु यह तो रोने का विषय नहीं होना चाहिए, कुन्तल ! यह तो चिन्तन का विषय है। रोता हुआ व्यक्ति तो व्यथा अनुभव करता है और उस व्यथा का अनुभव करता हुआ व्याकुल होता है। व्याकुल व्यक्ति चिन्तन नहीं कर सकता। चिन्तन और चिन्तन के परिणामस्वरूप ठीक परिणामों पर पहुँचने के लिए निर्लेप होकर अर्थात् आसक्ति छोड़कर विचार करना चाहिए।"

"परन्तु यह सब मुझे वागाडम्बर प्रतीत होता है।"

"ऐसा नहीं, कुन्तल ! देखो, मैं बताती हूँ। कुलवन्त से विवाह के समय तुमने इसको भूल नहीं समझा था। कदाचित् तुम यह समझ रही थीं कि तुम अपने जीवन का एक बहुत सोचा-समझा हुआ कार्य कर रही हो। क्या मैं ठीक नहीं कह रही ?"

कुन्तल गम्भीर होकर विचार करने लगी। कुछ क्षण तक विचार कर उसने कहा, "हाँ, उस समय मैं समझती थी कि मैं कितनी चतुर हूँ कि दिल्ली के एक अति श्रेष्ठ व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर सकी हूँ।

"मैं रिश्ते में अपनी एक मौसी के पास आकर ठहरी थी। माता-पिता तो पंजाब में ही रह गये थे। कदाचित् वे अब जीवित भी नहीं हैं। हम सियालकोट से जम्मू की ओर जा रहे थे कि मुसलमान बलवाइयों के घेरे में आ गए। मुझको एक बलवाई पकड़कर घर ले गया। मेरे माता-पिता का क्या हुआ, मैं नहीं जानती। उस मुसलमान ने मुझको अपनी बीवी बनाकर रखने की इच्छा प्रकट की। मैं मान गई। उसकी दो पत्नियाँ पहले से थीं। वह मुझको अपनी पत्नियों के पास रखकर लूट-मार के लिए पुनः घर से निकल गया।

"उसकी बीवियो ने मुझको देखा और दया से अथवा सौतियाडाह से मुझको वहाँ से भाग जाने को कहने लगीं। मैं मान गई। उन्होंने अँधेरा होते ही मुझको भाग जाने का मार्ग बता दिया। मैं भागने में सफल हुई और रात-भर चलती हुई पन्द्रह मील का सफर तय कर एक हिन्दू गाँव में पहुँच गई। यह गाँव रियासत में था। वहाँ से जम्मू और फिर एक क़ाफ़िले के साथ पठानकोट, जालन्धर और दिल्ली आ पहुँची। मौसी का पता जानती थी। उससे मिली। उसने रख तो लिया, परन्तु अपनी हीन आर्थिक अवस्था का भी वर्णन कर दिया। मैं ट्यूशन करके अपना और उसका पेट भरने लगी। मैंने बी० ए० किया और फिर बी० टी० भी। इसके पश्चात् मुझको स्कूल में नौकरी मिल गई। उस समय मेरी मौसी का एकाएक देहान्त हो गया और मैं संसार में अकेली रह गई।

"एक दिन मैं स्कूल से लौट रही थी कि अजमलखाँ पार्क में एक जलसा हो रहा था। जलसा कांग्रेस का था और मैं अनायास ही खड़ी होकर सुनने लगी। वहीं मुझे आपके देवर के दर्शन हुए। ये मेरे पास ही खड़े भाषण सुन

रहे थे। मुझे इनका मुख काफ़ी आकर्षक प्रतीत हुआ और ऐसा लगा कि ये हर प्रकार से मेरे पति बनने योग्य हैं। फिर भी लज्जावश मैं कुछ कह नहीं सकती थी।

"इन्होंने भी मुझे देखा और फिर देखते रहे। इनका देखना मुझे कोई बुरा नहीं लगा। जब भाषण समाप्त हुआ तो काफ़ी अँधेरा हो चुका था। मैं घर जाने के लिए घूमी तो ये मेरे साथ-साथ चलते हुए कहने लगे, 'चलिए, मैं आपको घर तक छोड़ आऊँ।'

'इसकी आवश्यकता नहीं। मुझे रास्ता ज्ञात है।' मेरा कहना था।

'आप जानती नहीं। इस रास्ते में कुछ गुण्डे आने-जाने वाली लड़कियों को तंग कर रहे हैं।'

"मैं कुछ सहम-सी गई। परन्तु फिर पूछने लगी, 'पर क्या आप अकेले मेरी रक्षा कर सकेंगे?'

'मैं लड़ तो सकता हूँ। रक्षा करने का यत्न भी कर सकता हूँ। तो भी मेरा कहना है कि इधर बड़ी सड़क से चलिए। जहाँ तक सम्भव हो गुण्डों से बचकर ही रहना चाहिए।'

"मैं इस सहानुभूति के प्रदर्शन में कुछ प्रयोजन समझ रही थी, परन्तु वह प्रयोजन मेरे प्रतिकूल नहीं था। अतः मैं इनके साथ चलने को तैयार हो गई।

"मैं अपने परिवार में अकेली थी। मुझे अपना विवाह भी स्वयं ही करना था और यह एक सुअवसर था जब मैं एक हृष्ट-पुष्ट तथा भले प्रतीत हो रहे व्यक्ति से परिचय प्राप्त कर सकती थी। अतएव मैंने इस अवसर को हाथ से न जाने देने का निश्चय कर लिया।

"कुछ दूर चलने पर एक होटल आया तो ये कहने लगे, 'यदि आप आधे घण्टे के लिए मेरे साथ इस होटल में चलें तो मैं आपको ये दस रुपये दे सकता हूँ।' इतना कहकर इन्होंने दस रुपये का एक नोट दिखा दिया।

"परिचय बढ़ाने का ऐसा ढंग मुझे नहीं आया। फिर भी मुझे ऐसा लगा कि आदमी शरीफ है, केवल मुझको ग़लत समझ रहा है। इन्होंने मुझे एक वेश्या समझ लिया था। अतः इनका भ्रम मिटाने के लिए मैंने कह दिया, 'मुझे आपके दस रुपये की आवश्यकता नहीं। रुपये मेरे पास काफी हैं। मैं

एक स्कूल में अध्यापिका हूँ। डेढ़ सौ रुपये कमा रही हूँ।'

"मेरे इतना कहने पर ये घबरा गए। इनको कुछ लज्जा भी लगी। मैं इनकी हालत देख मुस्करा रही थी। मैंने अब पूछ लिया, 'आप क्या करते हैं आजकल ?'

"ये मेरा मुख देखने लगे। फिर कुछ सोचकर बोले, 'कुछ नहीं करता। मैंने एम० ए० फ़र्स्ट डिवीज़न में पास किया है और नौकरी की तलाश में हूँ।'

'आप भले पुरुष प्रतीत होते हैं। सुन्दर भी हैं। आप चाहें तो मैं विवाह के लिए तैयार हो सकती हूँ।'

'प्रस्ताव तो अच्छा है। मैं विवाह के लिए अभी तैयार हूँ।'

'इस प्रकार नहीं। मैं बराबरी की उपासिका हूँ। आप कहीं नौकरी कर लें। उसके पश्चात् विवाह होगा। हम दोनों कमाएँगे और आनन्दपूर्वक रहेंगे।'

"ये मान गए। परन्तु फिर पूछने लगे, 'आप कहाँ रहती हैं? आपके पिता क्या करते हैं?'

'मेरे माता-पिता नहीं हैं। वे पाकिस्तान में ही रह गए थे। मैं अकेली रहती हूँ।'

'तो मुझको अपने घर ले चलो।' इनका आग्रह हुआ।

'जी नहीं। इसका परिणाम आप नहीं जानते, क्या होगा। कल मुहल्ले वाले धक्के मार-मारकर मुझे मुहल्ले से निकाल देंगे। मैं दर-दर मारी-मारी फिरूँगी। कदाचित् इतनी बदनाम हो जाऊँ कि स्कूल से भी छुट्टी मिल जाए।'

'तो फिर आपसे कहाँ मुलाकात हुआ करेगी ?'

'म्युनिसिपल गर्ल्ज़ हायर सेकेण्डरी स्कूल के बाहर शाम को चार बजे।'

"इस दिन के उपरान्त ये प्रतिदिन मुझसे मिलने लगे और हमारी विवाह की योजना परिपक्व होती गई। जब इनको दो सौ रुपये मासिक की नौकरी मिली तो हमने पटेलनगर में मकान ले लिया।

"हमने परस्पर यह वचन दिया कि दोनों नौकरी करेंगे और अपनी

आय को एकत्रित कर शान से रहेंगे। इस प्रकार के वचन से मैं समझती थी कि यह मेरी चतुराई है कि एक निःसहाय अबला होने पर भी एक भले पढ़े-लिखे युवक से विवाह करने में सफल हुई हूँ।

"शेष आप जानती ही हैं। मुझको अपनी भूल का प्रथम ज्ञान सोमा चाची ने कराया था। उन्होंने आने के पहले दिन ही, मुझको गर्भ-भार से दबी हुई लड़खड़ाते पगों से स्कूल जाते देखा तो बोलीं, 'बहुत सस्ता बेच रही है अपने को। इतना कष्ट कुछ चाँदी के टुकड़ों के लिए और उन टुकड़ों से मिलने वाली साड़ी-जम्फर के लिए! कल से स्कूल जाना बन्द करो।'

"मैंने चाची को कहा, 'इतनी लम्बी छुट्टी नहीं मिल सकती।'

'तो नौकरी छोड़ दो। जिसने तुमको यह भार ढोने को दिया है, खर्चा भी उसको ही देना चाहिए। मैं रात को कुलवन्त से कह दूँगी कि इस प्रकार कष्ट दे-देकर मारने के स्थान पर संखिया खिलाकर समाप्त कर देना चाहिए।'

'चाची! इस प्रकार कोई मरता है?'

'निश्चय ही तुम मरोगी। यदि जीवन प्यारा है तो शेष दो महीने आराम करो।'

"उस दिन मैं चुपचाप स्कूल गई और जब सायंकाल लौटी तो सोमा चाची इनको डरा रही थीं। मैं नौकरी से छुट्टी लेने के लिए तैयार हो गई।

"दो दिन पश्चात् मैं यहाँ आ गई। यहाँ आकर मुझको ज्ञात हुआ कि जितना मैं कमाती हूँ उससे अधिक मेरे घर की ओर न ध्यान देने के कारण खर्च हो रहा है।

"जब मुझको अपना मूल्य पता लगा तो मेरी इनसे पट नहीं सकी। अब तो ये मुझसे सम्बन्ध रखकर मुझपर अहसान कर रहे प्रतीत होते हैं। मेरे चुप रहने की कीमत ये मुझे देने आए हैं, दो रातें मेरे साथ व्यतीत कर।"

राधा ने यह कहानी सुनी तो कह दिया, "मुझको इसमें न तो रोने की कोई बात समझ में आई और न ही पश्चात्ताप करने की। तुमने सोच-विचार कर जो ठीक समझा सो किया। तुमको कुलवन्त ने वेश्या समझा था परन्तु तुम एक भले घर की लड़की की भाँति अपने को बेचने के लिए तैयार

नहीं हुई। तुमने विवाह किया और अपने विचार से प्रत्यक्ष रूप में एक भले युवक के साथ विवाह किया। यदि वह निर्बुद्धि निकला है तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है ?

"होना यह चाहिए था कि जब तुमको और उसको यह समझ में आने लगा कि गृहस्थ में पुरुष पैसा कमाने के लिए है और स्त्री उस पैसे को परिवार के लाभ में खर्च करने के लिए है, अर्थात् घर-गृहस्थी में यह काम का बँटवारा है तो उसको तुम्हारी नौकरी छोड़ देने पर रुष्ट नहीं होना चाहिए था।"

"पर बहनजी ! वे तो कुछ और कहते हैं। उनका कहना है कि मेरे जेठ मुझसे अनुचित सम्बन्ध रखने के कारण मुझको खाने-पीने को देते हैं। इस कारण उन्होंने दूसरा विवाह किया है।"

राधा हँस पड़ी। बोली, "वह मूर्ख है। उसकी शिक्षा में कुछ दोष है। उसके मस्तिष्क में कुछ ऐसी बात बैठ गई है कि सब व्यापारी बेईमान होते हैं और नौकरी करना एक ईमानदारी का काम है। कोई भी व्यक्ति ईमानदारी से लाखों नहीं कमा सकता है।

"वह देश की पूर्ण धन-सम्पदा का मालिक सरकार को मानता है। और जन-जन को बेईमान मानता है और उन बेईमानों पर नियन्त्रण रखने के लिए सरकार का प्रत्येक प्रकार का नियन्त्रण लगाने का अधिकार मानता है।

"देखो कुन्तल। तुमने यह भूल जान-बूझकर नहीं की। इस कारण तुमको रोने की आवश्यकता नहीं, पश्चात्ताप की भी आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है विचार करने की कि अब इस बिगड़ी बात को सुधारा कैसे जाए ? बताओ क्या चाहिए ?

"एक सुझाव कुलवन्त ने दिया है। दूसरा सुझाव तुम्हारे श्वसुर देते हैं। वे चाहते हैं कि तुम त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करो और अपने इन दुर्दिनों के निकल जाने की प्रतीक्षा करो। तुम्हारे पुनः नौकरी कर लेने पर भी विचार हुआ था। सबका विचार है कि यदि दिल-बहलाव के लिए तुम नौकरी करना चाहो तो बात दूसरी है, अन्यथा इसकी आवश्यकता नहीं। वैसे दिल-बहलाव के लिए घर में ही एक छोटा-सा स्कूल खोल लो, आस-पड़ोस के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देनी आरम्भ कर दो। खाने-पीने

की अथवा तुम्हारी बच्ची के लिए धन की कमी नहीं रहेगी। एक प्रस्ताव तुम्हारे जेठजी का है कि तुम पुलिस में रिपोर्ट कर दो। इससे उसके झूठ का भाँडा फूट जाएगा। उसकी नौकरी तो जाएगी ही और एक वर्ष की उसको सजा हो जाएगी। साथ ही उसका दूसरा विवाह भी टूट जाएगा। इस दण्ड के भोगने से तुम्हारे पति को अपनी भूल का ज्ञान होगा और आशा की जा सकती है कि भविष्य में वह तुम्हारे साथ साधारण जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दे।

"एक सुझाव मेरा भी है। तुम बिना इस बात का विचार किये कि कुलवन्त ने कोई दूसरा विवाह किया है, यह समझ लो कि वह परदेस में नौकरी पर गया हुआ है और तुम्हारे पास कभी-कभी ही आ सकता है। यह उत्तरदायित्व कि उसने अपराध किया है और उसकी रिपोर्ट होनी चाहिए, तुम अपने ऊपर मत लो। जब उसकी पत्नी को किसी घटनावश पता चल जाए तो यह उसका काम है कि वह रिपोर्ट करे अथवा तुम्हारे पति को बाँटकर रहे।

"इन मार्गों के अतिरिक्त एक मार्ग और भी है। यह तुम्हारे मनन का विषय है कि तुम किस प्रकार भावी जीवन व्यतीत करना चाहती हो। बीती बात पर रोना-धोना छोड़ो और आगे का विचार करो।"

राधा और कुन्तल में बातें चल रही थीं कि जुगलकिशोर और रामस्वरूप दोनों भोजन के लिए आ गए। बरकतराय भी आ गया था। कुलवन्त को बैठक में बैठे देख, सब विस्मय में उसका मुख देखते रह गए। जुगलकिशोर ने पहले उसको सम्बोधन किया, "कुलवन्त! कब आए?"

"भैया! आज सवेरे ही पहुँचा हूँ।"

"परन्तु यहाँ किसलिए आए हो?"

"अपनी पत्नी से मिलने के लिए।"

"मिले हो?"

"हाँ, परन्तु उसने कमरे से निकाल दिया है। साथ ही उसने अपने घर चलने से इनकार भी कर दिया है।"

"अपने घर? कहाँ है तुम्हारा घर?" जुगलकिशोर ने उसके समीप ही बैठते हुए पूछा। [illegible]

कुलवन्त ने कहा, "यहाँ दिल्ली में। पटेलनगर वाला मकान अभी मैंने छोड़ा नहीं है।"

"अपने साथ नागपुर क्यों नहीं ले जाते ?"

"वहाँ ? यह कैसे हो सकता है, भैया। वह तो मेरी माशूका का घर है। यह वहाँ जा नहीं सकती और यदि गई तो अपमानित की जा सकती है।"

"माशूका अथवा पत्नी ?"

"एक ही बात है, भैया ! वह अपने को कुछ भी मान सकती है। कानून से दूसरा विवाह अमान्य ही है।"

"परन्तु तुम धोखा देने के अपराध में वन्दी बनाए जा सकते हो। तुम्हें एक वर्ष की कैद हो सकती है।"

"हाँ, भैया ! मैं जानता हूँ। इसलिए मैं कुन्तल को वहाँ ले जाना नहीं चाहता। साथ ही चाहता हूँ कि कुन्तल को यहाँ अपने घर पर रखूँ।"

"जी तो चाहता है कि अभी टेलीफ़ोन कर दूँ, और तुम्हें पुलिस की हिरासत में दे दूँ, परन्तु तुम्हारी पत्नी मानती ही नहीं।"

"मैं जानता हूँ, क्यों नहीं मानती। उसे आवश्यकता भी नहीं। जब उसे तुम लोगों से, धन-वैभव तथा शारीरिक सुख प्राप्त है तो उसे क्या आवश्यकता है जो बेकार में मेरे पीछे पड़े ?"

इस लांछन से तो जुगलकिशोर स्तब्ध रह गया। रामस्वरूप को क्रोध चढ़ आया। वह उठकर क्रुद्ध हो बोला, "कुलवन्त ! होश में बात करो। एक निरपराध भली स्त्री को इस प्रकार बदनाम कर रहे हो। देखो, उस देवी के विरुद्ध यदि एक भी शब्द और कहा तो एक ही घूँसे से दाँत बाहर निकाल दूँगा।"

बरकतराय ने कहा, "बैठो रामस्वरूप ! भाई-भाई लड़ते भले प्रतीत नहीं होते।"

"पिताजी ! इसके क्रोध से तो मेरे सन्देह की पुष्टि ही हुई है। मैं यही विचार करता हूँ कि इन तीनों ने उसको घर में रख···।"

रामस्वरूप का घूँसा कुलवन्त की कनपटी पर लग ही गया और कुलवन्त भी उठकर मुकाबला करने लगा। इस समय पिता और जुगलकिशोर ने दोनों भाइयों को पृथक्-पृथक् कर दिया। घर की स्त्रियाँ और

स्कूल न जाने वाले दो बच्चे भी बड़ों को लड़ते देखकर वहाँ आ खड़े हुए।

कुन्तल और राधा भी वहाँ आ गई थीं। उन्होंने झगड़े का कारण सुना था। जब कुलवन्त हाँफता हुआ सोफे पर बैठा तो उसके दाँतों से खून बह रहा था। बरकतराय ने रेवा को कहा, "बहू! थोड़ा ठण्डा जल और चिलमची ले आओ।"

जब रेवा जल और चिलमची लेने चली गई तो बरकतराय ने कह दिया, "रामस्वरूप! इस मूर्ख से झगड़ा कर तुमने स्वयं को ही छोटा बनाया है। मैं तो कभी विचार करता हूँ कि इसके जन्म-दिन बृहस्पति अस्त था, अन्यथा मेरे घर में इतने बुद्धिविहीन लड़के का जन्म तो आश्चर्यजनक बात है।"

जब कुलवन्त कुल्ला कर चुका तो राधा ने भोजन की घोषणा कर दी। बरकतराय ने भी कह दिया, "चलो कुलवन्त! भोजन तो कर लो।"

"अब खाया जा सकेगा क्या?" कुलवन्त ने मुख पर हाथ लगाते हुए कहा।

"चलो दूध, डबल रोटी मिल जाएगी। भूखे तो बात भी नहीं हो सकती।"

भोजन के पश्चात् बरकतराय ने कुन्तल को बुलाकर पूछा, "बहू! कुलवन्त तुमको अपने घर ले जाना चाहता है। इसका कहना है कि तुम पटेलनगर में रहना और जब-जब इसको अपनी प्रेमिका से अवकाश मिला करेगा, यह तुम्हारे पास आ जाया करेगा।"

कुन्तल ने आँखें नीची किये हुए कह दिया, "मैंने इनको अपना मत बता दिया है। मैं इस स्थिति में वहाँ नहीं जाऊँगी। जैसे यह आपको कह रहे हैं कि वह इनकी रखैल है, वैसे ही यह उसको कहते होंगे कि मैं इनकी रखैल हूँ। इस झूठ के जाल में मैं फँसना नहीं चाहती।

"मैंने मन में यह निश्चय कर लिया है कि जब तक जेठ तथा जेठानियाँ घर से निकालेंगी नहीं, मैं यहीं रहूँगी। अपनी बेबी और आपके परिवार की मान-प्रतिष्ठा के लिए नौकरी भी नहीं करूँगी। आप लोगों की सेवा से अपने जीवन को कृतकृत्य करूँगी।

"हाँ, जब आप घर से निकाल देंगे तो फिर [illegible] बात बन

जाएगी। उस स्थिति में मैं क्या करूँगी यह अभी कुछ नहीं कह सकती।"

"बताओ कुलवन्त ! क्या कहते हो?"

"कुछ नहीं; मैं कल नागपुर लौट जाऊँगा।"

"ठीक है जा सकते हो।"

बात समाप्त हो गई। कुलवन्त ने घर का सामान पंचकुइयाँ रोड पर कबाड़ी के पास पहुँचा दिया और घर को खाली कर चाबी मकान-मालिक के पास पहुँचा दी।

जब से दिल्ली की एक स्त्री नागपुर में मलिन्द से उसके पति के विषय में पूछने आई थी और मलिन्द ने अपने पति को उसका नाम-धाम बताया था, तब से ही मलिन्द अपने पति के मुख पर चिन्ता और उसके कार्यों में मन की चंचलता अनुभव करने लगी थी। रात को बहुत देर तक वह जागता रहता था और उसके प्यार में शिथिलता आ रही थी।

जब भी वह पूछती, "आप इतने चिन्तित क्यों हैं?" तो कुलवन्त कह देता, "नहीं तो ! मुझे किस बात की चिन्ता होगी?"

"आप बात करते-करते भूल जाते हैं कि आप क्या कह रहे हैं। वैसे भी आपको मुझसे अरुचि हो रही प्रतीत होती है।"

"कुछ नहीं, मलिन्द ! यह तुम्हारा भ्रम है।" इस प्रकार वह बात को टाल देता था।

मलिन्द ने देखा कि कभी-कभी आधी रात जागकर वह अपने आस-पास टटोलने लगता था।

उसने अपने भाई से इस बात का उल्लेख किया। उसको कुछ ऐसा लगा कि कार्यालय मे कुछ भूल हो गई है और उसके परिणामस्वरूप उसका पति भयभीत रहता है। मलिन्द का भाई कम्पनी की नागपुर शाखा में अकाउन्टेन्ट था और उसकी जानकारी में कोई ऐसी बात नहीं थी। इसके विपरीत कुलवन्तराय के पिछले दो मास के कार्य से उच्च अधिकारी बहुत प्रसन्न थे। इस आश्वासन के पश्चात् मलिन्द का पुनः उस स्त्री पर सन्देह गया जो कुछ दिन पूर्व दिल्ली से मिलने आई थी। उसको विश्वास होता जाता था कि उसके पति के मन की चिन्ता का कारण वह स्त्री न हो।

एक बात सन्तोषजनक थी। ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत हो रहे थे, कुलवन्त का चित्त स्थिर और मन स्वस्थ प्रतीत होने लगा था। इससे जहाँ यह सन्तोष का विषय था, वहाँ उस स्त्री से ही उसके पति की चिन्ता का सम्बन्ध था, स्पष्ट होता जाता था।

कुन्तल को नागपुर से गए तीन मास व्यतीत हो गए तो एक दिन कुलवन्त ने मलिन्द से कहा, "मैं दो-तीन दिन के लिए दिल्ली जा रहा हूँ।"

मलिन्द को पुनः सन्देह हुआ कि उसके पति के स्वर में कुछ कम्पन है। इससे उसने उसकी आँखों में देखा तो कुलवन्त की आँखें झुक गईं और वह अपने जाने की सफाई देने लगा। उसने कहा, "वहाँ अपना पहला मकान खाली करना है। मालिक-मकान बार-बार लिख रहा है और किराया भी तो बेकार में देना पड़ रहा है।"

मलिन्द मन में विचार करती थी कि मकान खाली करना है तो आँखें क्यों झुक गई हैं। यह कोई लज्जा की बात थी क्या? उसको पुनः सन्देह हुआ कि दाल में कुछ काला है।

कुलवन्त दिल्ली गया और समय से पहले ही लौट आया। साथ ही रामस्वरूप के मुक्के से उसका मुख अभी तक भी सूजा हुआ था। मलिन्द अपने पति का सूजा हुआ मुख देख चिन्ता में पूछने लगी, "यह क्या हुआ है?"

"इसी कारण तो समय से पहले लौट आया हूँ।"

"आपका तो मुख सूजा हुआ है?"

"हाँ, भाइयों से झगड़ा हो गया था और मुक्का-मुक्की हो गई थी।"

"तो आप उनसे झगड़ने गए थे? मैंने तो कहा था कि मुझको आपके पिता की सम्पत्ति में से कुछ नहीं चाहिए। फिर झगड़ा करने की क्या आवश्यकता थी?"

"मैं झगड़ा करने नहीं गया था। झगड़ा तो उन्होंने किया था। उन्होंने तुम्हारे विषय में कुछ कहा, जो मैं सहन नहीं कर सका। बस फिर क्या था, झगड़ा हो गया और मैं पहली गाड़ी से लौट आया हूँ।"

"बहुत अच्छा किया है। देखिए, मैं आपको एक शुभ सूचना देना चाहती हूँ। मुझे दिन चढ़ गए हैं। आपके बाल-बच्चे होंगे। वे यहीं रहेंगे, पढ़ेंगे और फिर उनके विवाह इसी स्थान पर होंगे। इस प्रकार आप महा-

राष्ट्रियन हो जाएँगे।"

कुलवन्त हँस पड़ा। मलिन्द ने पानी गरम कर, तौलिया भिगो मुख पर टकोर की ओर अपनी चिन्ता तथा मारपीट के स्पष्टीकरण से सन्तुष्ट हो गई। कुलवन्त अब पहले से अधिक स्थिर-चित्त होकर रहने लगा था।

एक बात कुलवन्त ने मन में निश्चय कर ली थी कि यदि सम्भव हो सका तो वह भारत से बाहर नौकरी कर लेगा, जिससे वह पुनः अपने घर वालों से मिल ही न सके, न ही उसके दो पत्नियों वाला होने की बात विख्यात हो सके। ज्यों-ज्यों मलिन्द का गर्भ बढ़ता गया, वह अपने अधिकारियों से मेलजोल बढ़ाता हुआ कहीं विदेश जाने का मार्ग ढूँढ़ता गया।

मलिन्द के लड़का हुआ और उसके कुछ ही दिन पश्चात् कम्पनी का चीफ़ मैनेजर भारत का दौरा करते हुए नागपुर आया। कम्पनी का काम धन्धा देखने के पश्चात् उसने सब कर्मचारियों की सर्विस-फाइलें देखीं। कुलवन्त का बढ़िया काम देख वह उससे मिला। चीफ़ मैनेजर ने कहा, "मैं तुम्हारे काम से अति प्रसन्न हूँ। कहो, तुम्हारे लिए क्या करूँ?"

कुलवन्त ने अवसर देख कह दिया, "यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे भारत से बाहर कहीं काम दे दीजिए।"

"भारत से बाहर?"

"जी! मैं देश से बाहर कुछ भ्रमण करना चाहता हूँ।"

"क्या वेतन लोगे?"

"जिससे वहाँ मान से जीवन-यापन हो सके।"

"अच्छी बात है। मैं तुमको हैड ऑफ़िस से लिखूँगा।"

उसने अपनी डायरी में उसका नाम और काम नोट कर लिया।

तीन महीने के भीतर ही कुलवन्तराय को सिंगापुर ऑफ़िस का इन्चार्ज बना दिया गया। दो मास पासपोर्ट इत्यादि बनाने में लग गए और एक दिन कुलवन्त अपनी पत्नी और बच्चे के साथ हवाई जहाज़ से सिंगापुर जा पहुँचा।

तीन

कुलवन्त के रामस्वरूप से झगड़ा कर चले जाने से यह निश्चय हो गया कि वह लौटकर नहीं आएगा। उसको वापस बुलाने और नई पत्नी से पृथक् करने का एक ही उपाय था और वह उपाय, जैसा जुगलकिशोर चाहता था, यह था कि कुन्तल पुलिस में रिपोर्ट कर दे। परन्तु कुन्तल ने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया।

कुन्तल का कहना था कि वह रिपोर्ट नहीं करेगी। अपने पति के इस व्यवहार का दोष वह स्वयं को देती थी। उसने इसमें युक्ति देते हुए कहा—"जिस ढंग से मेरा उनसे परिचय हुआ था और जो कुछ उन्होंने मुझको समझा था, उसकी उपस्थिति में मुझे उनसे विवाह स्वीकार नहीं करना चाहिए था। मैं अब भी देखती हूँ कि उनकी प्रकृति और मेरे विषय में उनकी धारणा वही बनी हुई है, जो पहले दिन थी। वे तब भी मुझे वेश्या समझे थे और अभी भी यही समझते हैं। दोष मेरा है कि मैंने उनसे विवाह किया। इस कारण अब मैं, उनके द्वारा मुझे छोड़े जाने पर, रोष नहीं करती।"

"तो मैं उसकी रिपोर्ट कर दूँ?" जुगलकिशोर ने पूछ लिया।

"मैं इस विषय में क्या कह सकती हूँ। आप जानें, आपके भाई साहब जानें। मैं तो उनकी आशा छोड़ बैठी हूँ।"

बरकतराय ने भी इस प्रस्ताव का विरोध किया। उसका कहना था, "जुगल ! यह कानून कि एक समय में एक ही पत्नी रखी जा सके, हमारी परम्परा के विपरीत है। जहाँ पत्नी भली स्त्री होगी, इस कानून से घाटे में रहेगी। वह न तो तलाक दे सकेगी और न ही तलाक दिये जाने पर दूसरा विवाह कर सकेगी। जो स्त्रियाँ छिनाल होंगी, वे ही इस कानून से लाभ उठा सकेंगी। वे अपने पति के दूसरा विवाह कर लेने पर नंगी हो कूद पड़ेंगी, पति को बदनाम करेंगी और स्वयं दुराचार का मार्ग ग्रहण करेंगी।

"वास्तव में समाज के सम्मुख समस्या यह थी कि जहाँ पति दो विवाह करते हैं, वे दोनों स्त्रियों से सम-व्यवहार नहीं रखते। दो पत्नियों से समता

का व्यवहार लाने के प्रयत्न में दूसरा विवाह करने की स्वतन्त्रता छीन ली गई है।

"इसी प्रकार समस्या यह थी कि एक स्त्री दो पति क्यों न रखे ? मैं तो कहता हूँ कि इस पर भी प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए। कारण, ऐसे प्रतिबन्ध न रहने से भी कोई हानि नहीं होती। कोई भी स्त्री स्वभाववश दो पति नहीं कर सकती। यदि करे भी तो दोनों पति परस्पर झगड़ पड़ें और कदाचित् उस स्त्री की हत्या कर डालें। परिणामस्वरूप ऐसी स्वीकृति होते हुए भी कोई स्त्री इसका प्रयोग न करती।

"तलाक का कानून तो ठीक है। जब पति-पत्नी पृथक्-पृथक् रहना चाहें अथवा दूसरा विवाह करना चाहें तो जाएँ भाड़ में, परन्तु अपनी परम्पराओं के अनुरूप यह अधिकार पत्नी को मिलना चाहिए था कि तलाक माने अथवा न माने। जब पत्नी न माने तो 'सैपरेशन' तो हो जाए, परन्तु तलाक अर्थात् दूसरा विवाह करने की स्वीकृति पति को न हो। पत्नी जब पति को स्वीकृति नहीं देगी तो स्वयं भी दूसरा विवाह नहीं कर सकेगी।"

जुगलकिशोर का प्रश्न था, "पत्नी जब दुराचारिणी हो तो वह पति को बाँधकर क्यों रखे ?"

"दुराचार तो दण्डनीय होना ही चाहिए। या तो दुराचारिणी स्त्री पति को तलाक की स्वीकृति दे दे, अन्यथा दुराचार अर्थात् 'एडल्टरी' के लिए दण्ड भोगे। प्रत्येक अवस्था में तलाक पत्नी की ओर से होना चाहिए, पति की ओर से नहीं। पति को दूसरा विवाह करने का अधिकार हो।"

"तब तो घरों में पत्नियों का राज्य हो जाएगा। वे पति को अँगुलियों पर नचाएँगी।"

"ठीक है, परन्तु अब तो पति पत्नी को अँगुलियों पर नचाया करेंगे, विशेष रूप से भली स्त्रियों को।

"मैं कह रहा था कि जब कानून अशुद्ध हो तो इससे लाभ उठाकर अपने भाई से झगड़ा क्यों करो ? मैं तो उसको विवश करना चाहता था कि वह कुन्तल और मधु के लिए खर्चा बाँध दे। जब खर्चा न दे तब उसको पकड़वाने की धमकी दी जा सकती थी। परन्तु रामस्वरूप ने झगड़ा करके सब काम बिगाड़ दिया।"

कुन्तल ने कहा, "पर पिताजी ! मैं उनसे धन नहीं लेना चाहती थी। धन लेने से यह अर्थ निकलता था कि मैं उनके अपराध को छिपाने का मूल्य माँग रही हूँ।

"मेरे ऐसा कहने का अभिप्राय कि 'जब आप घर पर नहीं रखेंगे तो विचार करूँगी कि कहाँ जाऊँ,' यही था कि मैं आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने के विषय में विचार करूँगी।"

"जब तक मैं जीवित हूँ," बरकतराय ने बात समाप्त करने के लिए कह दिया, "तुमको धनाभाव नहीं रहेगा। मेरे मरने के उपरान्त तुम और जुगलकिशोर इत्यादि परस्पर निश्चय कर लेना।"

इस प्रकार जीवन सरलता से चलने लगा। कुन्तल ने घर में निश्चित काम ले लिया। घर का सारा काम स्त्रियाँ और बच्चे ही करते थे। किसी भी बाहरी आदमी को घर में आने नहीं दिया जाता था, यहाँ तक कि चौका-बासन के लिए भी एक बहू काम करती थीं, सारा काम सब बहुओं ने मिल-कर परस्पर बाँट रखा था। बच्चे माताओं की सहायता करते थे।

कुन्तल ने स्वेच्छा से चौका-बासन का काम ले लिया और दिन में दो बार चौका-बासन कर देती थी तथा खाने का कमरा और मेज़ साफ करके रखती थी। सन्तोषी इसमें उसकी सहायता करती थी।

घर का काम स्वयं करने की प्रथा बरकतराय ने आरम्भ से ही डाल रखी थी और यह प्रथा अभी तक चली आ रही थी। इस प्रथा से लाभ सभी अनुभव करते थे। घर में अनाज का एक दाना भी व्यर्थ नहीं जाता था तथा क्रॉकरी कम टूटती थी। बर्तन कम घिसते थे और घर में किसी प्रकार की चोरी नहीं होती थी।

जिन दिनों आय कम थी, उन दिनों तो इस प्रथा से बहुत ही लाभ हुआ था। घर में नौ बच्चे थे, परन्तु घर की सफ़ाई तथा अन्य व्यवस्था बहुत अच्छी रही थी। अब आर्थिक व्यवस्था ठीक होने पर भी स्वभाववश यह परम्परा चली आ रही थी। सबसे बड़ी बात यह हुई कि बच्चों को काम करने का अभ्यास पड़ रहा था।

कुन्तल ने चौका-बासन करने के अतिरिक्त बच्चों की पढ़ाई तथा शिक्षा

का भार भी अपने ऊपर ले लिया। बच्चों के स्कूल से लौटने पर, उनसे स्कूल से मिले काम के विषय में पूछना, शाम को स्कूल का काम कराना तथा पाठ का अभ्यास कराना, यह उसका नित्यप्रति का काम हो गया। उसके एक महीने के परिश्रम से ही उसके बी० ए०, बी० टी० होने तथा कई वर्षों के अनुभव ने अपना फल दिखाया। बरकतराय तथा उसके लड़के कुन्तल के व्यवहार से अति प्रसन्न तथा सन्तुष्ट थे।

समय व्यतीत होने लगा। कुलवन्त को झगड़कर गए पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके थे कि एक दिन सोमा चाची दिल्ली आ पहुँची। वैसे वर्ष में एक-आध बार ही उसका पत्र आता था और उसका उचित उत्तर चला जाता था। पिछली बार, जब चाची ने ज़ोर देकर कुन्तल के विषय में पूर्ण समाचार लिखने के लिए कहा तो कुन्तल ने पूर्ण परिस्थिति का वर्णन कर दिया था।

जब मधु पाँच वर्ष की हुई तो सोमा चाची का पत्र आया, "मैं अमुक दिन दिल्ली आ रही हूँ।' और उस दिन वह दिल्ली आ पहुँची। अपने कपड़ों की गठरी बगल में दबाए, जब वह मकान में दाखिल हुई तो सबसे पहले कुन्तल की नजर उस पर पड़ी। कुन्तल ने चाची को देखा तो पायलागूँ कर दी। चाची ने आशीर्वाद दिया और सबसे पहले मधु के विषय में पूछ लिया —"कहाँ है, मधु ?"

"चाची ! वह तो स्कूल गई है।"

'ओह ! तो वह स्कूल जाने योग्य हो गई है !"

"हाँ चाची ! पिछले मास पाँच वर्ष की हुई थी और पड़ोस के बच्चों के एक स्कूल में दाखिल करा दिया था।"

"और दूसरी बहुएँ कहाँ हैं ?"

'अन्दर हैं। आओ न चाची !" कुन्तल ने उसकी बग़ल से गठरी पकड़ते हुए कहा, "आओ, बच्चे सब स्कूल-कॉलेज गए हुए हैं। बड़ी जेठानीजी पूजा कर रही हैं। रमणी और रेवा बहन अपने-अपने कमरों में हैं।"

रमणी और रेवा को पता चला तो वे अपने-अपने कमरों से बाहर चली आईं और चाची को पायलागूँ करने लगीं। चाची ने उनको आशीर्वाद दिया। रमणी ने कह दिया, "चाची ! इतनी बार तुमको बुलाया और तुम नहीं आईं और इस बार अचानक ही कल तुम्हारा पत्र मिला। बड़े बच्चों को जब पता

चला कि तुम आ रही हो तो खुशी से नाचने लगे। मधु बेचारी सबका सुख देखती रही।"

रेवा ने कह दिया, "चाची ! कल पिताजी को जब हमने बताया कि तुम आ रही हो तो वे बड़े हैरान हुए और फिर कहने लगे कि तुम अब अपने जेठजी को यमुनाजी में बहाकर ही जाओगी। हमारा विचार है कि अभी पिताजी बीस वर्ष से अधिक जिएँगे। हमने जब यह कहा तो कहने लगे कि तब तक तुम भी यहीं रहोगी। ठीक है न चाची !"

"जेठजी बड़े अच्छे कर्मों वाले जीव हैं। यह तो मैं जानती नहीं कि मैं कब तक रहूँगी। हाँ, एक बात मैंने की है। इस बार अपनी बगिया बेच आई हूँ। मेरी चालीस बीघा भूमि थी। सरकार कानून बना रही है कि किसी के पास भी बीस बीघा से अधिक भूमि नहीं रहने दी जाएगी। इस कारण बीस बीघा मैंने पहले ही बेच डाली थी। शेष बीस बीघा भी बेचने का प्रबन्ध कर आई हूँ। अब गाँव में केवल मकान अपना है। अभी तो उसको ताला लगा आई हूँ। परन्तु जेठजी कहते हैं तो मैं यहाँ रहूँगी और उसको भी बेचने का प्रबन्ध कर दूँगी।"

"चाची ! भूमि बेचना तो ठीक नहीं ! खैर, यह प्रसन्नता की बात है कि अब तुम हमारे पास रहोगी।"

इस समय राधा भी वहाँ आ पहुँची। उसने पायलागूँ की तो चाची ने आशीर्वाद देकर कहा, "घर से एक बात मन में विचार कर चली थी। यदि वह पूरी न कर सकी तो फिर न जाने क्या करूँगी, कह नहीं सकती।"

"क्या बात चाची ?"

"मैं पाँच वर्ष से यह बात मन में विचार कर रही थी कि कुन्तल की बेटी मधु को गोद ले लूँ। एकाएक पिछले वर्ष मेरे मन ने कहा कि मधु बेटी को गोद ले लूँगी तो कुन्तल का घर वाला लौट आएगा और कुन्तल के पाँव पकड़कर क्षमा माँगेगा। यह बात मैंने दिन के समय स्वप्न में देखी। बस मैंने विचार करना आरम्भ कर दिया कि मधु के लिए क्या प्रलोभन लेकर दिल्ली चलूँ।

"इस समय मधु के दहेज के लिए दस हज़ार नकद बैंक में है। सात हज़ार के लगभग बगिया और भूमि का मिला है। वह मैं साथ दिल्ली ले आई

हूँ। अपने आभूषण मैंने बैंक में रखे हुए हैं। उसका भी पाँच सहस्र तो मिलेगा ही! वे पाँच सहस्र मरने तक के लिए खाने-पीने को रखूँगी। बताओ कुन्तल! दोगी मधु को मुझे ?"

"चाची! मधु तो तुम्हारी ही है। यह रुपये तुम रखो और मधु को भी ले लो। भला यह भी कोई पूछने की बात है!"

इस समय बरकतराय और तीनों भाई आ गए। आज मोहनदास भी भोजन करके नहीं गया था। वह भी इस समय भोजन के लिए आया था।

बरकतराय ने सोमा चाची को देखा तो कहा, "सोमारानी! आ गई हो?"

"हाँ, जेठजी! आपने उस समय घर में ही रह जाने के लिए कहा था, जब अभी रक्त में गरमी थी। मुझको उस पर विश्वास नहीं आया और यह कहकर कि उसको ठण्डा हो जाने दो फिर आऊँगी और आपकी सेवा करूँगी, चली गई थी। अब समझती हूँ कि इस पापी मन में दम नहीं रहा है और यहाँ रहने के लिए आई हूँ। बताइए रखेंगे ?"

बरकतराय हँस पड़ा। हँसकर बोला, "पगली सोमा! तुमको मुझ पर विश्वास नहीं आया था न! कहा भी था कि मन्दिर में देवी के समान रह सकोगी। खैर, सुबह की भूली रात को घर आई, वह भी ठीक है।"

सब भोजन पर चले गए।

इस प्रकार बरकतराय के परिवार में एक और प्राणी सम्मिलित हो गया। सोमा चाची बच्चों को बहुत प्रिय थीं। जब सब बच्चे स्कूल अथवा पढ़ाई का काम समाप्त करते तो चाची की कोठरी में एकत्रित हो जाते और वह उनको कहानियाँ सुनाया करती। आधा घंटे का कार्यक्रम बच्चों के लिए अति आकर्षक बन गया था। रात का भोजन करते ही वे सोमा चाची को घेरकर बैठ जाते और तब तक पीछा नहीं छोड़ते, जब तक वह एक कहानी सुना न देती।

मधु तो उसके साथ सरेस की भाँति चिपकी रहती थी और धीरे-धीरे वह सोमा चाची के साथ ही सोने लगी थी।

एक दिन मधु आई और माँ से कहने लगी, "माँ! माँ!"

"हाँ, क्या कहती हो मधु ?"

"चाची कहती है कि मैं उसको माताजी कहकर पुकारा करूँ।"

"ठीक कहती हैं।"

"मुझको चाची कहना भला लगता है।"

"तो कह दो कि तुम उसको चाची कहकर पुकारोगी।"

"कहा था। परन्तु वह कहती थीं कि चाची मैं सबकी हूँ, परन्तु माताजी केवल तुम्हारी हूँ।"

"ठीक कहती हैं।"

"माताजी किसको कहते हैं?"

"मुझको क्या कहती हो?"

"अम्मा।"

"अम्मा क्या होती है।"

"अम्मा···अम्मा अम्मा होती है।"

"इसी प्रकार मधु! माताजी माताजी होती हैं।"

"तो फिर उनको माताजी कहूँ?"

"देखो मधु! बड़ों का कहना मानकर उनको प्रसन्न रखना चाहिए। इससे वे आशीर्वाद देते हैं और उसका फल बहुत अच्छा होता है।"

मधु कुन्तल का मुख देखती रह गई। धीरे-धीरे सोमा चाची मधु की माताजी बन गई और कुन्तल अम्मा ही रही।

एक दिन सोमा चाची अपने गाँव गई और अपनी शेष भूमि भी बेच आई। उसने अपना सब रुपया मधु के नाम जुगलकिशोर के पास जमा करा दिया। जब जुगलकिशोर ने यह बात अपने पिता को बताई तो उसने सोमा से इसका कारण पूछा, "सोमा! इसकी क्या आवश्यकता थी? मधु अब निर्धन कुलवन्त की बेटी नहीं है। यह है बरकतराय की पोती, जो इसको बहुत-कुछ देने वाला है।"

"जेठजी की पोती तो है ही। उनकी तीन और पोती भी तो हैं और भगवान् करे दो-चार और भी हो जाएँ। परन्तु सोमा की तो एक ही लड़की है और उसने उसके नाम यह रुपया कर दिया है।"

"पर क्यों? यही तो पूछ रहा हूँ।"

"इसलिए कि जो कुछ मैं अपनी लड़की को देना चाहती हूँ, उसमें से

सरकार कुछ छीन न सके। मरने पर सरकार टैक्स लेती है न!"

"परन्तु तुम्हारे वीस-पच्चीस हज़ार में से कुछ नहीं लेगी।"

"जेठजी! मैं जानती हूँ, परन्तु यह लोभी सरकार कल को टैक्स लगाने योग्य रकम को पचास हज़ार से कम करके पच्चीस हज़ार भी तो कर सकती है। मैंने अपने पच्चीस हज़ार को पहले से ही दो टुकड़ों में कर दिया है—वीस हज़ार मधु के नाम और पाँच हज़ार अपने नाम। क्या जाने मरने तक यह तीस और इससे भी अधिक हो जाएँ।"

"तो इसकी लिखा-पढ़ी कर दो।"

"हाँ, इसके लिए मैं मोहन को कह रही हूँ। वहुत ही कंजूसी और परिश्रम से यह धन मैंने एकत्रित किया है और मैं अपना अधिकार मानती हूँ कि जहाँ चाहूँ, इसको व्यय करूँ। मरने से पहले यह सांसारिक तैयारी है।"

वरकतराय और उसके पुत्र तथा वहुएँ हँस पड़ीं। रेवा ने पूछ लिया, "चाची! इस धन को कमाने के लिए फावड़ा चलाया था क्या?"

"उससे भी अधिक, वेटी! तुम शहर में रहने वाली स्त्रियाँ इस परिश्रम का अनुमान नहीं लगा सकतीं।

"मेरे पतिदेव की मृत्यु के समय उनके सम्बन्धियों ने वलपूर्वक इस भूमि पर अधिकार कर लिया था। मैं अकेली थी। मेरी सास और श्वसुर का देहान्त तो पतिदेव के वाल्यकाल में ही हो चुका था। सम्वन्धियों ने उनकी साठ बीघा भूमि जोत ली तो मैं निराश्रय रह गई। मैं भी तब छोटी आयु की थी। कचहरी में जाते भय लगता था। मुकद्दमा लड़ने के लिए रुपया नहीं था। कोई भी मेरा मददगार नहीं था। विवश होकर दावा दायर कर ही दिया। पहले मुफलसी की प्रार्थना की। वह स्वीकार हुई तो सम्बन्धियों को वेदखल करने का दावा किया। साथ ही आधी पैदावार के लिए माँग करदी।

"तुम क्या जानो कि एक देहाती अदालत में एक जवान और सुन्दर स्त्री को क्या कठिनाई पड़ती है। फिर अपने निर्वाह और मुकद्दमे के लिए भी धन चाहिए था। मैं अपने जेठजी से सहायता लेने आई। वे बेचारे स्वयं घोर कठिनाई में थे। इनकी सौभाग्यवती पत्नी बच्चे-पर-बच्चे पैदा कर रही थी।

"फिर यह भी अभी जवानी के मद में थे। कहने लगे—यहीं रह जाऊँ मुकद्दमा करके क्या करूँगी? इतना कह ये प्रेम-भरी दृष्टि में मेरी ओर

देखने लगे। जेठजी मेरे घरवाले से अधिक सुन्दर और गठित शरीर रखते थे। साथ ही ये साफ़-सुथरे कपड़े पहनते थे। मेरे मन में पाप आ गया। मैंने इनको कह दिया, "आऊँगी, परन्तु जरा जवानी की गरमी कम हो ले।" इन्होंने कहा भी कि मैंने ग़लत अनुमान लगाया है। ये अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे, परन्तु मुझको इनकी आँखों में मस्ती देख, इनके कथन पर विश्वास नहीं हुआ और मैं भगवान् के भरोसे जाकर गाँव में मेहनत-मजदूरी कर निर्वाह तथा मुकद्दमा करने लगी। गाँव में एक वकील थे। उनसे एक बार अपने हक का वृत्तान्त जान स्वयं ही अदालत में जाकर अपना मुकद्दमा लड़ने लगी।

"तहसीलदार ने एक बार पूछा भी, 'तुम्हारा वकील नहीं है क्या?'

"मैंने कह दिया, "मेरे दो वकील हैं---एक भगवान् और दूसरे भगवान् का अवतार आप न्यायमूर्ति। मेरे पास वकील करने को पैसा नहीं है।" इस पर तहसीलदार के मन में पता नहीं दया आई अथवा क्या आया, कह नहीं सकती, उसने मेरे पति के सम्बन्धियो को बहुत डाँट-फटकार बताई और कह दिया कि वे मेरे साथ समझौता कर लें। विवश हो वे गाँव के चौधरी के द्वारा समझौते की बातचीत करने लगे। मैं अपनी विवशता के कारण, चौधरी के कहने पर जो कुछ उसने दिलवाया मान गई। उसने दस बीघा भूमि और पाँच सौ रुपये दिलवा दिए--किस न्याय से, यह मैं समझ नहीं सकी। फिर भी कचहरी-रूपी दुस्तर सागर पार करने में अपनी असमर्थता अनुभव कर मैं चौधरी की बात मान गई।

"अब अपने निर्वाह के लिए यत्न करने लगी---भगवान् का भजन, दिन-रात खेत की रखवाली और फिर बहुत कम पर निर्वाह।

"गाँव का कोई ही युवक ऐसा होगा, जिसने मुझ पर चादर डालने का यत्न नहीं किया होगा। गाँव में अपने घर में रहते हुए मैं अनुभव किया करती थी कि मेरे पतिदेव मेरी रक्षा के लिए उपस्थित रहते हैं। एक तो उनकी आत्मा मुझमें साहस बँधाती रहती थी और दूसरे पापियों के मन को त्रसित करती रहती थी।

"एक दिन खेत को पानी दिलवाने के लिए मैं बहुत सुबह खेत को जा रही थी कि गाँव का एक गुण्डा नत्थासिंह मुझ पर लपक पड़ा। मैं भगवान् का नाम लेकर उससे जूझ गई। मुझको कुछ ऐसा लगा कि मैं अकेली नहीं हूँ।

मेरे साथ खड़े मेरे पति उससे मुक्का-मुक्की कर रहे हैं। मेरे विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब नत्थासिंह हाँफता हुआ गाँव को भाग गया।

"मैंने पल्ली-पल्ली एकत्रित कर कुप्पा भर लिया। पैसे-पैसे की बचत कर दो हजार एकत्रित किए तो एक बगिया मोल ले ली। उसमें सन्तरे, आम, केले, आड़ू और खुमानी के पेड़ थे। दो वर्ष और ठहरकर मैंने पाँच बीघा भूमि खरीद ली, फिर पाँच बीघा और। अमृतसर बैंक में हिसाब खोल लिया। और अब मेरे पास तीस बीघा भूमि, फलों की एक बगिया और दस हजार नकद थे।

"इस समय मुझको सरकार की नीयत में अन्तर आता-सा लगा। सरकार ने कानून पास कर दिया है कि कोई भी व्यक्ति बीस बीघा से अधिक भूमि नहीं रख सकता। मैंने बीस बीघा भूमि बेच दी। फिर मधु को गोद लेने का विचार आया। इस पर विचार करने लगी कि मधु भला गाँव में कैसे प्रबन्ध करेगी। अतः मैंने दस बीघा और बेच दी। बगिया बेची और यहाँ चली आई हूँ। शेष दस बीघा भी अब बेच आई हूँ। जब बेचने का कागज लिखा रही थी तो वसीकानवीस ने बताया कि सरकार ने मरने वालों की सम्पत्ति पर भी टैक्स लगाया है। इस पर मैंने निश्चय कर लिया कि मधु का भाग तुरन्त ही पृथक् कर, लिखत-पढ़त कर देनी चाहिए। सो कर दिया है।

"मोहन भैया! शीघ्र प्रबन्ध कर दो। कहते हैं कि यदि दान-पत्र करने में तीन वर्ष के भीतर मर गई तो दान-पत्र अमान्य हो जाएगा।"

"पर चाची!" मोहन ने कह दिया, "तुम अभी बीस वर्ष तक नहीं मरोगी।"

"क्या होगा, भैया! कौन कह सकता है! तुम्हारे चाचा तो एक क्षण में ही चल बसे थे। मैं समझती हूँ कि बिस्तर बाँध तैयार रहना चाहिए। समय पर तो हाथ-पैर फूलने लगते हैं। तब कुछ किये बनता नहीं।"

बरकतराय ने पूछा, "परन्तु क्या यह बिस्तर साथ जाने वाला है? यह धन-दौलत और मधु आदि सभी यहीं रह जाएँगे। साथ ले जाने के लिए कौन-सा बिस्तर बाँधा है?"

सोमा चाची ने मुस्कराते हुए कहा, "वह भी है, जेठजी! पिछले पच्चीस वर्ष घंटों ही भगवान का भजन और चिन्तन किया है। इसने इस संसार से

तो निर्लेप निकल जाने में सहायता दी है। अब कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि वह आगे के लिए भी मार्गदर्शन कर रहा है।"

"कैसे कहती हो यह ?"

"देखो, मुझको स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि जेठजी से पहले मैंने यहाँ से जाना है। मेरा उनका मार्ग भी भिन्न-भिन्न है।

"मुझको भगवान् ने यह भी बताया है कि अब गाँव में रहना मेरे लिए हितकर नहीं। मेरे पतिदेव अब सद्गति को प्राप्त हो गए हैं और वह घर, जिसमें मैं रहती थी, सूना हो गया है। इससे मैं यहाँ चली आई हूँ।"

सोमा चाची के कार्य विलक्षण होते थे। धीरे-धीरे घरवालों को उसकी सूझ-बूझ पर विश्वास होता जाता था। बरकतराय इसको सूझ-बूझ नहीं कहता था। उसका कहना था कि भगवान् इसका साथी है और वह इसकी अँगुली पकड़कर लिए जा रहा है।

एक दिन सोमा चाची अपने पूजा के आसन से उठी और जुगलकिशोर के कमरे के बाहर जाकर उसको पुकारने लगी। जुगलकिशोर शौच से निवृत्त हो दातुन-कुल्ला कर रहा था। चाची की आवाज़ सुन वह बाहर चला आया। चाची ने छूटते ही कहा, "भैया! शीघ्र जाओ और जेठजी को यहाँ बुला लाओ। उनसे कुछ आवश्यक काम है।"

"चाची! अभी नहा-धोकर जाता हूँ।"

"नहीं भैया! अभी जाओ। मुझको भय लग रहा है कि कहीं देर न हो जाए।"

जुगल ने चिन्ता प्रकट करते हुए पूछा, "क्यों चाची! तबीयत तो ठीक है?"

"नहीं, ठीक नहीं है। जाओ भैया! शीघ्र जाओ।"

"पर चाची! तुम आराम से बैठो। इस प्रकार बाहर जाड़े में खड़ी क्यों हो? आज तो बहुत ठंड है।"

सोमा ने मुस्कराकर कहा, "बेटा जुगल! मरने वाले को सरदी-गरमी लगनी बन्द हो जाती है।"

जुगल इससे उलट समझता था। उसने एक मित्र की पत्नी मरने के

समय चीखें मारती रही थी और कहती थी कि कोई उसको कोड़ों से पीट रहा है। जुगल के मुख पर संशय की झलक देख चाची ने कहा, "तुमको विश्वास नहीं हो रहा है न ! मान जाओ, नहीं तो मुझको स्वयं ही जाना पड़ेगा।"

जुगल इतने आग्रह की अवहेलना नहीं कर सका। तुरन्त वस्त्र पहन नीचे उतर गया।

बरकतराय अभी भी कूँचा पातीराम वाले मकान में रहता था। अब भगतराम करौलबाग में रहने लगा था। अभी प्रातःकाल के छः बजे थे। जनवरी मास में छः बजे अँधेरा ही होता है। जब जुगल ने मकान का दरवाज़ा खटखटाया तो बरकतराय ने खिड़की से झाँककर देखा और जुगल को पुकारते देख नीचे चला आया।

"क्या बात है, जुगल ! इतनी सर्दी में किसलिए आए हो ?"

"पिताजी ! चाची की तबियत खराब है। वह आपको बुला रही है।"

"क्या है उसको ?"

"देखने में तो स्वस्थ और नित्य से अधिक सचेत प्रतीत होती है। पहले तो उसके भजन गाने की आवाज़ आ रही थी। आवाज़ सुनकर मैं जागा और शौचादि में लग गया। अभी दातुन-कुल्ला कर रहा था कि वह मेरे कमरे के बाहर आ गई और बोली कि जल्दी से आपको बुला लाऊँ। उसने कहा, "शीघ्र जाओ। मुझको भय लग रहा है कि कहीं देर न हो जाए।' सो पिताजी ! मैं सीधा ही चला आया हूँ।"

"तो चलो ! मैं स्नान कर पूजा पर बैठने ही वाला था कि तुम आ गए।"

बरकतराय ने कपड़े बदले और जुगलकिशोर के साथ चल पड़ा। गली से बाहर निकले तो रिक्शा मिल गया। दोनों सवार हो दरियागंज जा पहुँचे। वहाँ सोमा चाची बैठक में बैठी हाथ में माला लिए राम-नाम जप रही थी। बरकतराय को आया देख वह उठ खड़ी हुई और स्वाभानुसार थोड़ा घूँघट निकालकर बोली, "पाँय लागूँ जेठजी ! बैठो।"

"सोमा ! मैं तो डर गया था, पर तुम तो भली-चंगी हो।"

"हाँ, डर की ही बात है। पर बैठो तो।"

इस समय तक [illegible] ने अपने पति [illegible] को बुलाए जाने की

बात सबको बता दी थी। इससे उनके आते ही सब बैठक में एकत्रित हो गए।

जुगल ने बच्चों को भी वहाँ आते देखा तो उनको कहा, "अरे, तुम लोग जाओ! नहा-धोकर तैयार हो जाओ। पढ़ने नहीं जाना?"

सोमा चाची ने कहा, "नहीं, आज ये स्कूल नहीं जाएँगे। आओ बच्चो, बैठ जाओ। मोहन! घड़ी में समय देखना।"

जुगल के हाथ पर घड़ी बँधी थी। उसने समय देखकर कहा, "चाची! साढ़े सात बजे हैं।"

"अब देर नहीं। आधा घंटे का समय और है। कुन्तल!" चाची ने उसकी ओर देखकर कहा, "मधु जाग पड़ी है। जाओ उसको भी नीचे ले आओ।"

सोमा चाची की बातों पर सब विस्मय कर रहे थे। कुन्तल भागी हुई गई और मधु को कपड़े पहनाकर नीचे ले आई।

मधु ने पूछा, "माताजी कहाँ हैं?"

"नीचे हैं, बुला रही हैं।"

"कहाँ चलेंगे?"

कुन्तल बता नहीं सकी। जब तक वह नीचे आई, नीचे का चित्र बदल चुका था। सोमा चाची एक कथा सुना रही थीं। उसने कथा इस प्रकार आरम्भ की थी--

"जेठजी! ध्यान देकर सुनना। पीछे पश्चाताप लगेगा। बहुत दिन पहले की बात है। लाहौर में जहाँ आपके पिता अर्थात् मेरे श्वसुरजी के भाई रहते थे, वहाँ पीपल का एक वृक्ष था। वृक्ष मकान के साथ वाले मन्दिर में था। आपके पिता के मकान की खिड़कियों के साथ वृक्ष की डालें लगती थीं।

"उस वृक्ष की एक शाखा पर एक यक्ष रहता था। उस यक्ष ने अपने पूर्व-जन्म मे अपनी पत्नी को, जो बहुत सुन्दर और चंचल स्वभाव की थी, घर में बन्दी बना रखा था। एक दिन उसकी पत्नी, अपने पति को चिढ़ाने के लिए अपनी कोठरी का द्वार खोल निकल पड़ी और पड़ोसी की पत्नी से बातें करने चली गई। उसने पड़ोसिन के पति के कभी दर्शन भी नहीं किये थे और न ही उस समय उसके मन में किसी प्रकार का पाप था। यह तो पति के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह-मात्र था।

"दुर्भाग्य से उसका पति उस समय घर आया जब वह पड़ोसिन के साथ बातें कर रही थी। कोठरी का द्वार खुला देख उसको बहुत दुःख हुआ। उसका विचार था कि उसकी पत्नी उसको छोड़ अपने किसी प्रेमी के साथ भाग गई है।

"वह कोठरी के द्वार पर बैठा विचार करने लगा कि क्या करे। इस समय उसकी पत्नी पड़ोसी की छत से कूदकर अपने घर में आ गई। उसके कूदने का शब्द सुन उस आदमी के सिर पर खून सवार हो गया। उसने एक छुरा निकाला और अपनी पत्नी का काम तमाम करने के लिए तैयार हो गया।

"जब उसकी पत्नी नीचे आई तो उसने छुरे वाला हाथ पीठ के पीछे छिपा लिया और पत्नी से पूछा, 'कहाँ गई थी?'

'मंगल के घर।' उसी विद्रोह की भावना से पत्नी ने उत्तर दिया।

'मंगल घर पर है?'

'ज़रूर होना चाहिए।'

"यह सुन उस पुरुष ने यह विचार किया कि पहले मंगल का काम-तमाम करना चाहिए, फिर अपनी पत्नी से निपट लेगा। इतना विचार कर वह मकान की छत पर चढ़ गया। अपने मकान की छत पर से पड़ोसी के मकान पर कूद नीचे चला आया। मंगल उसी समय कहीं बाहर से आया था और नीचे द्वार पर खड़ा था। उस पुरुष ने समझा कि मंगल कहीं जा रहा है। उसको कुछ ऐसा लगा कि वह उसकी पत्नी का भोग करके जा रहा है। इससे उसका क्रोध और भी बढ़ गया और बिना एक भी शब्द कहे, उसने आगे बढ़ मंगल के पेट में छुरा भोंक दिया। मंगल चीख मारकर गिर पड़ा और गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। उसकी चीख की आवाज़ सुन मंगल की पत्नी कमरे से निकल आई। उस पुरुष ने उस स्त्री पर भी वार किया। वह भागी। इस पर भी उसके कन्धे पर छुरा लगा और वह घायल हो गई।

"तदनन्तर वह पुरुष अपने घर आया। उसकी पत्नी ने उसके हाथ में रक्त-रंजित छुरा देखा तो चीख मारकर नीचे को भागी। परन्तु उस पुरुष के हाथ में उसकी चोटी आ गई और उसने अपनी पत्नी का काम तमाम कर दिया।

"इस प्रकार अपने विचार से तीन हत्याएँ कर वह भाग जाना चाहता था, परन्तु इस समय तक पत्नी के हल्ला करने के कारण मुहल्ले के लोग मकान के नीचे एकत्रित हो गए थे अतः वह पकड़ा गया।

"मुकद्दमा चला और वह फाँसी का दण्ड पा गया। मंगल की पत्नी ने अपने पति की दाहक्रिया होने के तेरहवें दिन, अपने शरीर पर मिट्टी का तेल छिड़ककर स्वयं को आग लगा ली और शरीर छोड़ दिया।

"वह पुरुष यक्ष बना। मंगल और मंगल की पत्नी सुग्गा-सुग्गी बन उसी वृक्ष पर रहने लगे। सुग्गा और सुग्गी को ज्ञात नहीं था कि वहाँ कोई यक्ष भी रहता है। वे बेचारे भोग-योनि में थे। यक्ष उनको जानता था और पहचानता भी था। वह उनके प्रेममय जीवन को देख और अपने को कर्म-बन्धन में बँधा एकाकी जीवन व्यतीत करते देख ईर्ष्या में जला करता था। यक्ष बोल नहीं सकते। वे कुछ कर भी नहीं सकते। उनके भाग्य में संसार को चलते देख तथा अपने लक्ष्य-स्थान की ओर जाते देख ईर्ष्या होती है और अपनी पशुता का दुःख भोगना पड़ता है।

"बीस वर्ष तक यक्ष उस वृक्ष पर रहा। मंगल और उसकी पत्नी सुग्गा और सुग्गी के रूप में हर प्रकार से सुखी जीवन का भोग करते हुए उसकी दृष्टि में रहे। बीस वर्ष उपरान्त यक्ष के दंड की अवधि समाप्त हुई और वह आपके पिता के घर एक लड़के के रूप में उत्पन्न हुआ। उस लड़के का नाम बरकतराय रखा गया।"

सब कहानी के इस अंश को सुन हँस पड़े। केवल बरकतराय गम्भीर बना बैठा रहा। जुगलकिशोर को सबसे पहले ध्यान आया कि उसके पिता के मुख का रंग उड़ रहा है। उसने इसे कहानी का प्रभाव ही समझा।

सोमा एक क्षण के लिए ही ठहरी और फिर पुनः कहने लगी, "समय पाकर सुग्गा और सुग्गी का पुनर्जन्म हुआ। सुग्गा तो आपका चचेरा भाई सोहन बना और सुग्गी आपके पड़ोस में एक गरीब परिवार की लड़की सोमा।

"आपको अपना जीवन शून्य से आरम्भ करना पड़ा था और मंगल, जो अब सोहन था, विवाह कर अमृतसर के एक गाँव में भूमि ले फार्मिंग करने चला गया। उसने अपनी पूर्ण सम्पत्ति बेच, उस धन से भूमि मोल ले ली

और उसको जोतने लगा।

"सोहन, नगर का रहने वाला था, अतः वह गाँव के कठोर जीवन को सहन नहीं कर सका। एक दिन जब वह अपनी पत्नी के साथ प्रेम-प्रलाप कर रहा था तो स्वर्गारोहण कर गया। अब वह स्वर्ग में मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। उस लोक में तो यह तीस वर्ष का काल केवल आधी घड़ी के समान व्यतीत हुआ है। इतने काल में मेरा जीवन व्यतीत हो गया है।

"परन्तु जेठजी···!"

बरकतराय दिल में घुटन अनुभव कर रहा था। वह सोफे के साथ ढासना लगाए आँखें मूँदे बैठा था। जब सोमा ने कहा, 'जेठजी' तो उसने कहा, "हाँ आगे कहो सोमा! जल्दी करो। घड़ी में आठ बजने में केवल पाँच मिनट रह गए हैं।"

"बस इतना और कहना है कि आज प्रातः पूजा करते समय मुझको यह समझ आया कि तुम मुझसे आगे निकलते जा रहे हो। आज प्रातः तुम आकाश में ऐसे घुलते हुए प्रतीत हुए, जैसे मिश्री की डली जल में विलीन होती जाती है।

"जेठजी मैं समझती हूँ कि आप वहाँ जा रहे हैं, जहाँ जाने का मेरा मार्ग अभी खुला नहीं। बोलो, बोलो राम···राम···।"

घर के सब सज्ञान प्राणी यह प्रयाण देख रहे थे। बरकतराय लम्बे साँस ले रहा था और उसके होंठों के हिलने से ऐसा प्रतीत होता था कि वह राम-राम का उच्चारण कर रहा है।

सोमा चाची सब बच्चों से राम-राम का जाप करा रही थी।

ठीक आठ बजे बरकतराय के प्राण-पखेरू उड़ गए। सब सज्ञान, जो सोमा चाची की कहानी और उसका इस समय सुनाने का अर्थ न समझते हुए भी चाची के इस कृत्य पर आश्चर्य कर रहे थे, आँखों में आँसू भरते हुए राम-राम का उच्चारण कर रहे थे।

सबको कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि चाची कमरे के रोशनदान की ओर देखती हुई राम-राम कह रही थी। एकाएक वह उठी और समीप पड़ी चादर उठाकर अपने जेठ पर डालकर बोली, "देखो बेटा! रोने-धोने की आवश्यकता

नहीं है। यह पुण्यात्मा सूर्यलोक को गया है और अपने जीवन के कार्यों का अवलोकन करता हुआ सन्तोष अनुभव कर रहा है। रोकर व्यर्थ में उसको दुःखी करोगे। अब संस्कार के विषय में दुनियादारी भी निभानी है।"

संस्कार हुआ, तेरहवाँ हुआ और पुनः घर में जीवन पूर्ववत् चलने लगा। केवल मध्याह्न के भोजन के समय घर का पुरखा, जिसने कठोर तपस्या से उस परिवार का निर्माण किया था, अब वहाँ नहीं होता था।

इस घटना का सबसे प्रबल प्रभाव कुन्तल पर हुआ था। उसको स्मरण था कि उसके माता-पिता देवी के भक्त थे। प्रतिमास जम्मू के पास वैष्णव-देवी के दर्शन के लिए जाया करते थे। भक्तगण सदैव रुद्राक्ष की माला गले में धारण किये रखते थे। परन्तु पाकिस्तान से भागते समय उनकी रक्षा के लिए न तो देवी आई और न ही भगवान् का कोई दूत। वह स्वयं बच सकी थी तो निर्दयी पत्नियों की ईर्ष्या के कारण। दिल्ली में उसकी मौसी घर बैठे खाते-खाते अपने धन के कोष के अन्तिम पैसे पर पहुँच चुकी थी। कुन्तल के कान में सोने की छोटी-छोटी दो बालियाँ थीं। उसने वे मौसी को दीं और वह उनको बेचकर मास-भर का अन्न खरीद कर लाई। यदि वे बालियाँ न होतीं तो वे दोनों भूखी मर गई होतीं।

अगले ही दिन वह पढ़ाने का काम ढूँढने में लग गई। दस रुपए मासिक की ट्यूशन मिली तो मौसी-भानजी का निर्वाह होने लगा। निरन्तर यत्न से अपनी आय पचास रुपये मासिक तक कर सकी थी। अब उसने इण्टर की परीक्षा दे डाली। तदनन्तर बी० ए० और फिर बी० टी। अपने प्रयत्न की सफलता पर उत्साहित हो उसने दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी के शिक्षा-विभाग में प्रार्थना-पत्र भेज दिया। जब उसकी स्कूल में नियुक्ति हुई तो वह अपने पूर्ण जीवन पर अवलोकन कर इस परिणाम पर पहुँची थी कि परमात्मा-आत्मा कहीं भी नहीं है। कुछ अज्ञानियों अथवा ढोंगियों ने भ्रमजाल फैला रखा है। पुरुषार्थ ही सबसे प्रबल और तत्त्व की बात है।

वह नास्तिक हो गई। उसको नौकर हुए अभी एक वर्ष ही हुआ था कि उसकी मौसी का देहान्त हो गया। तत्पश्चात् वह एकाकी जीवन से ऊब, विवाह करने का विचार करने लगी। वह समझती थी कि उसका न तो कोई सम्बन्धी है और न ही परमात्मा कहीं दिखाई देता है। इस कारण यदि

विवाह करना है तो स्वयं ही यत्न करना पड़ेगा।

वह मन्दिर, समाज और सभा-सोसाइटियों में जाने लगी। उसको विश्वास था कि कहीं कोई अनुकूल साथी मिल जाएगा और वह मिला अजमलखाँ पार्क में। कांग्रेस की मीटिंग हो रही थी और वह जन-समूह के एक किनारे खड़ी हो भाषण सुन रही थी। उसके समीप ही कुलवन्त खड़ा उसकी ओर देख रहा था। दोनों में परिचय हुआ और पश्चात् विवाह भी हो गया। कुन्तल समझती थी कि यह उसके पुरुषार्थ के कारण ही हुआ है और संसार में पुरुषार्थ ही एक महान् मंत्र है, जिससे मनुष्य का जीवन चल सकता है। भाग्य और पूर्व-जन्म किसने देखे हैं?

यह सब कुछ चलता रहा। तत्पश्चात् उसे गर्भ ठहर गया। वह सातवें मास में पहुँची। उसने और उसके पति ने घर का खर्च इतना बढ़ा रखा था कि निर्वाह में कठिनाई अनुभव होने लग गई थी। बस के झटके उसके उदर में पीड़ा करने लगे थे।

आठवाँ मास आरम्भ नहीं हुआ था कि वह अनुभव करने लगी कि मंज़िल के अन्त तक पहुँचा नहीं जा सकेगा। इस समय उसके पति को सोमा चाची का स्मरण हो आया। इससे पहले कुलवन्त ने सोमा चाची का नाम तक भी नहीं लिया था। कुलवन्त को यह सूझा कि सोमा चाची उसकी अधिक सहायता कर सकेगी, अतः उसने एक पत्र डाल दिया। कुन्तल को एक अपरिचित, दूर रहने वाली, दूर की सम्बन्धी स्त्री के आकर सहायता करने की किंचित्मात्र भी आशा नहीं थी। जब उसको उसके पति ने बताया कि चाची कल आ रही है तो वह अपने कानों पर विश्वास नहीं कर सकी थी। इस पर उसने यह समझा कि चाची का कोई स्वार्थ ही होगा, जिसके कारण मात्र पाँच नये पैसे का पोस्ट-कार्ड लिखने पर उसने आना स्वीकार कर लिया है।

सोमा चाची आई और उसने पहली ठोकर उसकी धारणाओं को तब दी, जब कुन्तल ने पूछा, "चाची! तुम विस्मय तो करती होगी कि जिन्होंने तुमको कभी किसी खुशी के अवसर पर याद तक नहीं किया, इस मुसीबत के समय बुला लिया है।"

"हाँ, विस्मय तो हुआ था," सोमा चाची का कहना था, "परन्तु

कुन्तल ! मैं तो गाँव वालों की सेवा करती ही रहती हूँ और सब मुझको मुसीबत के समय ही याद करते है।"

"तो तुम इनकार क्यों नहीं कर देतीं ?"

"नहीं बेटा ! कठिनाई के समय ही तो दूसरों की सहायता की जाती है। इनकार करना तो महापाप हो जाएगा।"

"यह पाप-पुण्य क्या होता है ?"

"जिस काम के करने से चित्त को शान्ति मिले, वह पुण्य होता है और जिसके करने से चित्त को अशान्ति हो, वह पाप होता है।"

"किस काम को करने से चित्त को शान्ति मिलती है ?"

"उस काम से जिसके अपने साथ किये जाने से स्वयं को सुख मिले।"

"परन्तु चाची ! क्या तुम सुख-प्राप्ति को हेय मानती हो ?"

"यह किसने कहा है ? देखो बेटा ! जिस व्यवहार से स्वयं को दूसरों से सुख मिले, उसी प्रकार का व्यवहार यदि हम दूसरों के साथ करेंगे तो उनको सुख मिलेगा। यह तो परस्पर लेन-देन का मामला है। अब देखो, जिस अवस्था में तुम हो वैसी किसी अवस्था में मैं होती और कोई मेरे समीप सहायता करने की दृष्टि से आता तो मुझे सुख मिलता ही। इसी कारण मैं तुम्हारे पास आई हूँ।"

"परन्तु चाची ! तुम इस अवस्था में, जिससे मैं हूँ, कभी होगी ही नहीं, फिर तुमको क्या आवश्यकता पड़ी थी मेरी सहायता के लिए आने की ?"

"इससे क्या अन्तर पड़ता है ? मुझको कभी किसी की सहायता की आवश्यकता होगी अथवा नहीं, इससे मेरे व्यवहार का निश्चय नहीं होता। मैं तो अपने व्यवहार का निश्चय इस प्रकार करती हूँ कि यदि मैं इस अवस्था में पड़ जाती और कोई मुझको सहायता देने आता तो मुझको सुख मिलता। इससे यह सिद्ध हुआ कि मेरी सहायता से दूसरे को सुख मिल रहा है। इतना ज्ञान-मात्र चित्त को शान्ति पहुँचाने वाला होता है। यही पुण्य है।"

"इस पुण्य से तुम्हें क्या लाभ होगा ? इससे तुम्हारे घर पर रुपयों की वर्षा होने से रही ?"

"पुण्य से रुपये कैसे आ जाएँगे ? कुछ कष्ट हो तो हो। रुपये इसका फल नहीं हो सकते।"

कुन्तल भी मन में यही विचार करती थी कि चाची उनके घर में तीन मास रहकर जाएगी और वे उसको कुछ देने वाले नहीं हैं। इस बात को सुन कि वह रुपयों की आशा से नहीं आई कुन्तल को प्रसन्नता तो हुई थी, परन्तु वह यह समझती थी कि या तो चाची मूर्ख है, जो इस निःस्वार्थ सेवा-भाव से जीवन व्यर्थ गँवा रही है, या किसी भारी भ्रम-जाल में फँसी हुई है।

एक और ठोकर उसके मन को तब लगी थी, जब चाची ने उसको गर्भ-भार को उठाए हुए नौकरी पर जाते देख कहा था, 'कहाँ जा रही हो ?'

'नौकरी पर।'

'नौकरी पर ? छोड़ दो इसको।'

'तो खाना-पीना कैसे चलेगा ?'

'खाना-पीना तो बहुत कम में चलता है पगली। हाँ, यह मेज-कुर्सी, यह रेशमी साड़ी-जम्पर, दरी-कालीन तथा इस प्रकार की व्यर्थ की चीज़ें नहीं चल सकतीं। इन चीजों के लिए नौकरी करती हो ?'

कुन्तल के दिमाग को ठोकर लगी तो उसने स्कूल से छुट्टी ले ली और मन में सन्तोष कर बैठी कि दो-तीन मास, जो अवैतनिक छुट्टी के होंगे, वह घर का सामान नहीं खरीदेगी और पुराने कपड़ों से ही निर्वाह कर लेगी।

परन्तु चाची ने एक और बात कह दी। घर पर रोटी बना पति को खिलाना अथवा बच्चों के पालन-पोषण में संलग्न रहना नौकरी कर सिनेमा देखने से अधिक मूल्यवान है।

चाची तो चली गई, परन्तु अपने पीछे कुन्तल के मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ गई।

इसके पश्चात् उसका अपने पति से मतभेद हो गया। पति उसको ले जाकर उसी मकान में रखना चाहता था, जहाँ के लिए सोमा चाची उसके मन में घृणा भर गई थी। इस मतभेद में राधा इत्यादि ने कुन्तल को प्रोत्साहन दिया। कुन्तल ने स्कूल की नौकरी छोड़ी तो कुलवन्त ने समझा कि वह उसको उसके भाइयों का दास बनाना चाहती है। जब जुगलकिशोर ने उसके नाम से व्यापार किया तो कुलवन्त को अपनी पत्नी का अपने भाइयों से अनुचित सम्बन्ध का विश्वास हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि कुलवन्त ने कुन्तल से मेल-जोल बन्द कर दिया।

यह तो इस परिस्थिति में घटना-मात्र थी कि वह नागपुर गया और वहाँ मलिन्द से विवाह कर बैठा। इन सब घटनाओं का प्रभाव कुन्तल के मन पर बहुत हुआ था, परन्तु जो घटना बरकतराय की मृत्यु के समय घटी, वह विलक्षण थी और उसका प्रभाव अवर्णनीय था।

तेरह दिन तक तो घर में एक विशेष प्रकार का वातावरण बना रहा। इस वातावरण में सबका ध्यान पूजा-पाठ तथा कीर्तन आदि में लगा रहा। राधा ने भागवत सप्ताह रखा लिया था और किसी को किसी अन्य विषय पर विचार करने के लिए अवसर ही नहीं था।

इतना सब कुछ होने पर भी कुन्तल का मन शान्त नहीं था। उसने अपना सज्ञान जीवन आरम्भ किया था परमात्मा पर पूर्ण अविश्वास से। इस अविश्वास में उसका विश्वास बढ़ा ही था, जब वह पुरुषार्थ से फल प्राप्त कर रही थी। उसका अपने पति से जब मतभेद हुआ था तो वह पुरुषार्थ की दिशा पर हुआ था न कि पुरुषार्थ के ऊपर किसी अन्य के आधिपत्य पर। परन्तु सोमा चाची ने कुछ ऐसी बात कर दिखाई थी कि उसका मस्तिष्क और उसकी सब धारणाएँ ठुन्न हो गई थीं।

बरकतराय का क्रिया-कर्म हो चुका था। घर में कार्य पूर्ववत् चलने लगा था। समय पाकर कुन्तल ने चाची से गूढ़ बात करने के लिए एकान्त में मिलकर पूछ ही लिया, "चाची ! जिस दिन से श्वसुरजी का देहान्त हुआ है, मेरा मस्तिष्क ठुन्न हो रहा है। जब विचार करती हूँ तो ऐसा अनुभव होता है, जैसे बुद्धि के प्रवाह में बाधा खड़ी हो गई है।"

"क्यों ? ऐसा क्यों हुआ ?"

कुन्तल ने अपने पूर्ण जीवन की कथा तथा अपने मस्तिष्क में विचार की हुई धारणाओं का उल्लेख कर कहा, "उस दिन जो कथा तुमने सुनाई थी और जिस ढंग से श्वसुरजी का देहान्त हुआ, उससे मेरी जीवन-भर की विचार की हुई बातें निराधार हो गई हैं।"

"इसलिए कि वे मिथ्या थीं।"

"तो क्या पुरुषार्थ व्यर्थ की बात है ? यदि सब-कुछ भाग्य से ही चलता हो तो फिर यत्न करने की क्या आवश्यकता है ?"

सोमा हँस पड़ी और बोली, "देखो—

तीन काल में कुछ नहीं मिलता, बिना भाग्य के इस जग में,
पुरुषार्थ को भी तो चाहिए संबल भाग्य का पग-पग में।
भाग्य है लंगड़ा चल नहीं सकता, बिन पुरुषार्थ किंचित् भी,
कभी न मिलती राम को सीता भले ही रहता चिन्तित भी।

फिर भी—

विश्वविजयी रावण को देखो मूर्ख क्यों वह बन बैठा,
सकल सम्पदा का स्वामी भी सिय हरन को ठन बैठा।
भाग्य का चक्कर ले आया था शूर्पणखा को उसके पास,
चल पड़ी थी भाग्य की गाड़ी विभीषण जब हुआ उदास।

"परन्तु कुन्तल ! तुम इस जीवन-मीमाँसा को समझ नहीं सकतीं। क्योंकि तुम पूर्व-जन्म पर विश्वास नहीं रखतीं।"

"जो दिखाई नहीं देता उस पर विश्वास कैसे कर लूँ, चाची !"

"तुमने तो बम्बई भी नहीं देखी। तो क्या बम्बई का अस्तित्व नहीं है ?"

"परन्तु चाची ! किसी ने तो देखी है बम्बई। उसका विश्वास करना पड़ता ही है।"

"इसी प्रकार कई हैं जिन्होंने पूर्व-जन्म देखा है। उनका विश्वास भी कर लो।"

"विश्वास कैसे कर लूँ ? बम्बई देखकर आने वाले तो वहाँ ले जाकर दिखा भी सकते हैं।"

"और यह कैसे जानती हो कि पूर्व-जन्म का दर्शन कराने वाला कोई नहीं है। कुन्तल ! तुमको कोई ऐसा व्यक्ति ढूँढ़ना चाहिए, जो इस विषय का जानकार हो। वह तुमको दर्शन करा देगा। एक बात मुझको ज्ञात हुई थी। वह मैंने जेठजी को बताई थी। उनको जब मैंने बताया कि उनका अन्तकाल आ गया है तो वे समझ गए थे और चुपचाप चल दिये। बस इतनी ही शक्ति मुझमें थी। वे जब परलोक के द्वार पर पहुँचे तो मेरी कहानी की सचाई को मान गए। उस समय वे दोनों लोकों को ऐसे देख रहे थे, जैसे कोई आदमी एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने वाले द्वार में खड़ा, दोनों कमरों को देख

सकता है। कठिनाई यह है कि तुम अभी एक ही कमरे में खड़ी हो और उस पूर्ण कमरे को भी भली-भाँति देख नहीं रही हो।

"मैंने तुमको बताया था कि कुलवन्त तुम्हारे पास लौटेगा। यह बताने में भी मेरी वह दृष्टि कार्य कर रही थी, जिससे मैं जेठजी के पूर्व-जीवन के विषय में कुछ जान सकी थी।"

"परन्तु तुम्हारी यह बात तो पूरी हुई ही नहीं, चाची! तुमने कहा था कि मधु को तुम्हारे गोद लेते ही वे लौट आएँगे। इसको अब एक वर्ष से ऊपर हो गया है।"

"इस भविष्यवाणी के सत्य होने में विलम्ब हो रहा है। वह इसलिए कि मनुष्य के जीवन में दो शक्तियाँ काम कर रही हैं। कुलवन्त की अवस्था में वे दोनों शक्तियाँ एक-दूसरे के विपरीत चल रही हैं। उसके पूर्व-जन्म के कर्म-फल और इस जन्म के संस्कार उसको दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में ले जाने का यत्न कर रहे हैं। फिर भी तुम इच्छा करो तो उसकी पूर्ति हो सकती है।"

"मेरी इच्छा नहीं होती। मैं नहीं जानती कि वे अभी अपने भाइयों की प्रवृत्ति वाले हुए हैं अथवा नहीं।"

"हाँ, कदाचित् वह अभी भी यही विचार करता है कि एक स्त्री को कम-से-कम अपने खाने-पीने के लिए स्वयं पैदा करना चाहिए।"

"हाँ, उनका ऐसा विचार करना स्त्री जाति की स्वतन्त्रता और स्वाभिमान को बनाए रखने के लिए ही है। किसी समय मैं भी ऐसा विचार रखती थी। इसके साथ ही हमारा विचार था कि दोनों मिलकर कमाएँगे तो हम सुख-सुविधा की अधिक सामग्री एकत्रित कर सकेंगे।"

"तो अब क्या हुआ है? काम-धन्धे को क्यों छोड़ बैठी हो? अब तो बच्चे पैदा करने के काम से भी छुट्टी है।"

कुन्तल बितर-बितर चाची का मुख देखने लग गई। कुछ विचारकर पूछने लगी, "तो क्या किसी ने कहा है कि मैं मुफ़्त की रोटियाँ तोड़ रही हूँ?"

"नहीं, इसके विपरीत राधा तो कह रही थी कि कुन्तल घर में बहुत बड़ा आश्रय बन गई है। बच्चे बड़े हुए हैं तो उनकी पढ़ाई के विषय में उनको पथ-प्रदर्शन मिल रहा है। जब दूसरी बहुएँ प्रसव-कार्य में संलग्न होती हैं तो तुम उनका काम भी समेट लेती हो। मैं तो तुम्हारी अपनी स्वतन्त्रता

और स्वाभिमान के विषय में कह रही थी।"

"इस बात का निर्णय मैं कर नहीं सकती। मैं देखती हूँ कि जब से अपनी जेठानियों के साथ आकर रहने लगी हूँ, मुझको सुख-सुविधा प्राप्त है। यहाँ तो सुख-सामग्री भी पहले से, मेरे कहने का अभिप्राय है कि अपने पति के साथ रहते हुए से, अधिक एकत्रित है। इससे इतना तो निर्विवाद है कि यह आवश्यक नहीं कि बिना स्त्री की कमाई से खर्चा चल नहीं सकता।

"पहले मेरा विचार था कि यहाँ बेईमानी की कमाई है, जिसको पुरुष करते हैं और इतना लम्बा-चौड़ा परिवार पलता है। साथ ही धन भी एकत्रित है। परन्तु अब मैं देखती हूँ कि श्वसुरजी तो दलाली करते-करते नौ बच्चों का पालन-पोषण और उन्हें विवाहने में सफल हुए थे, तो मेरी यह धारणा समाप्त हो गई है कि यहाँ कोई बेईमानी हो रही है। बड़े जेठजी ने कहा कि वे तो व्यापारी आदमी हैं। जब कानून बदलेगा तो वे भी बदल जाएँगे और अपने को कानून के अनुकूल कर लेंगे। उन्होंने मधु के पिता से कहा था कि पहले कानून बनवाओ। जब तक कानून ऐसा है जिसमें हम लाखों कमा सकते हैं, तब तक हम लाखों कमाते हुए भी बेईमान नहीं हैं।

"इससे मेरी धारणा यह हो गई है कि यहाँ बेईमानी तो नहीं है। फिर भी यहाँ मेरे और मधु के पिता जैसे अन्य व्यक्तियों में अन्तर तो है ही। मैं उस अन्तर को जानने का यत्न करती रही हूँ। घर का सुप्रबन्ध और पुरुषों में युक्ति से कार्य करने की पटुता तो स्पष्ट दिखाई दी है। मुझको यदि मधु के पिता की स्वयं नौकरी कर सहायता करनी पड़ी थी तो इस कारण कि उनमें वह कार्यपटुता नहीं थी, जो संतोष और वशिष्ठ के पिताओं में है।

"मैं चाहती थी कि वे यह कार्यपटुता सीख लें। परन्तु उन्होंने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। क्यों? यह मैं समझ नहीं सकी। मैं समझने लगी हूँ कि स्वतन्त्रता और स्वाभिमान का जीवन मेरे बिना नौकरी किये भी चल सकता था, यदि वे उस कार्यपटुता को सीख सकते। वैसे वे उस कम्पनी का काम तो बहुत कुशलता से करते हैं। ऐसा क्यों है? मैं नहीं जानती।"

"कुन्तल बेटी! इस क्यों का उत्तर है भाग्य। मानो न मानो, यही उत्तर है। देखो, पूर्व-जन्म के कर्मफल को हम भाग्य कहते हैं। परन्तु हम इस जन्म में भी निरन्तर उस भाग्य को सुधारने अथवा बिगाड़ने का यत्न करते रहते

हैं। कभी तो इस जन्म के कर्मफल का समर्थन करने वाले होते हैं और कभी विरोध करने वाले।

"जैसे किसी पुत्र को पिता की सम्पत्ति से एक सहस्र रुपया मिलता है। वह उस रुपये को विचारकर व्यापार में लगाकर एक हज़ार से अधिक कर लेता है। यह है पूर्व-जन्म के कर्मफल का इस जन्म के कर्म से समर्थन। परन्तु कुछ लोग व्यापार तो करते हैं, पर गलत तरीके से। परिणाम यह होता है कि वे अपने पूर्व-जन्म के कर्मफल का विरोध कर संचित धन को शीघ्र ही कम कर देते हैं। एक तीसरे प्रकार के भी लोग हैं। वे व्यापार नहीं करते। वे थोड़ा-थोड़ा संचित धन अपने सुख-सम्पादन में व्यय करते रहते हैं। ये वे लोग हैं जो अपने पूर्व-जन्म के कर्मफल का भोग करते हैं। नवीन कोई ऐसा कर्म नहीं करते जो पूर्व-जन्म के संचित कर्मों का समर्थन करे अथवा विरोध करे। प्रायः पशु इसी श्रेणी में होते हैं।

"इस प्रकार कुलवन्त अपने पूर्व-जन्म के कर्मों का विरोध कर रहा है। उस विरोध के कारण वह तुमसे मिलने नहीं आ सका। उसके पूर्व-जन्म के कर्म उसको यहाँ आने की प्रेरणा दे रहे हैं, परन्तु वर्तमान जीवन के कार्य उसके यहाँ आने में बाधा बन रहे हैं।"

कुन्तल का प्रश्न था, "चाची ! यह तुम कैसे जानती हो कि उसके पूर्व-जन्म के कर्म उसको यहाँ आने के लिए प्रेरणा दे रहे हैं ?"

"मैं जानती हूँ। मैंने तुम्हारे और कुलवन्त के पूर्व-जन्म को देखने का यत्न किया है। मैंने जो कुछ देखा है उससे ही ऐसा कह रही हूँ।"

कुन्तल अवाक् चाची का मुख देख रही थी। उसको कुछ ऐसा समझ आया था कि उसको भी कोई ऐसी कहानी सुनाने वाली है जैसी उसने अपने जेठजी को सुनाई थी। वह कहानी सुखान्त होगी अथवा दुःखान्त, वह कह नहीं सकती थी। इस कारण उसको पूछने का साहस नहीं हो रहा था। इसलिए वह चाची का मुख देखती रह गई।

"मैंने कुछ देखा है, जिससे ऐसा कह रही हूँ।" सोमा चाची ने भी यह कह बात समाप्त कर दी। कुन्तल ने पूछा नहीं कि उसने क्या देखा है और चाची ने बताया नहीं।

कुन्तल ने यह पूछ लिया, "चाची ! क्या सब कुछ तुम जाना करती हो

कि वे आएँगे ?"

"उसको अब तक आ जाना चाहिए था। किसी प्रकार की बाधा खड़ी हो गई है, जिसका मुझको ज्ञान नहीं हो रहा है। इसी से कहती हूँ कि तुम इच्छा को उत्पन्न करो तो वह आएगा।"

कुन्तल मन में विचार करती थी कि अब उसके मन में इच्छा तो है, परन्तु यदि उसने अभी भी आकर वही कुछ करना है, जो पहले करता था और करने को कहता था तो वह पुनः पहले से भी अधिक दुःख का कारण हो जाएगा। क्योंकि अब उसको अपने जेठ-जेठानियों के घर का सुख मिल चुका है।

कुन्तल को अपने पूर्व-जन्म के विषय में समाधान हुआ अथवा नहीं, कहना कठिन है, परन्तु उसके मन में अपने पति को पाने की प्रबल इच्छा जाग पड़ी। अब वह भी प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त हो अपने कमरे में अपनी चाची की भाँति पालथी मारकर चिन्तन करने लगी।

कुन्तल यह चिन्तन करती तो थी चोरी-चोरी, फिर भी यह घर वालों से छिपा नहीं रह सका। यह बात भी कुन्तल के जेठ-जेठानियों को विदित हो गई कि उसमें और सोमा चाची में घंटों ही घुस-फुस बातें होती रहती थीं। सबका विचार था कि कुन्तल के मन में प्रकाश हो रहा है और सोमा चाची की प्रेरणा से वह पूजा-पाठ में रुचि लेने लगी है। जुगलकिशोर को ये बहुत अच्छे लक्षण दिखाई देते थे। वह राधा को कहता रहता था, "बेचारी की जवानी गलती जा रही है। हम सबको भी उसके लिए भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिए।"

एक दिन राधा ने सोमा चाची को बधाई दे दी। उसने कहा, "चाची! तुम सत्य ही बधाई की पात्र हो, जो कुन्तल को भगवान् की ओर लगा सकी हो।"

सोमा चाची मुस्कराई और बोली, "जो जिसको भजता है, वह उसको पा लेता है।"

"यह तो है ही।" राधा ने समर्थन कर दिया।

"वह अपने पति के नाम की माला जपती है और मुझको ऐसा प्रतीत हो रहा है कि गुलवन्त शीघ्र ही आ जाएगा।"

"तो वह परमात्मा को क्यों नहीं जपती ?"

सोमा चाची खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसका कहना था, "परमात्मा का भजन परमात्मा की प्राप्ति के लिए विरले ही कर पाते हैं। प्रायः लोग सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए ही भगवान् का भजन करते हैं। उनको सांसारिक सुख अपने-अपने भाग्यानुसार न्यूनाधिक मिलते रहते हैं।"

"कुछ भी हो चाची ! कुन्तल काफी तपस्या कर चुकी है। कुछ उसके लिए तुम भी यत्न कर दो। बेचारी का भला हो जाएगा।"

"मैं बीच में पड़ने वाली कौन हूँ ! यह कोई राजदरबार तो है नहीं कि यहाँ कोई सिफारिश चल जाएगी। यहाँ तो जो कुछ होगा, उसके अपने करने से ही होगा। मैं तो केवल यह साहस और विश्वास उसमें भर सकती हूँ कि उसकी तपस्या फल लाएगी। सो मैं कर रही हूँ।"

एक दिन जुगलकिशोर ने अपने भाई भगतराम को बुलाया और अन्य दोनों भाइयों तथा जेठानी-देवरानियों को बिठाकर एक सूचना दी। उस समय सोमा चाची भी वहीं बैठी थी। आजकल वही बरकतराय के परिवार की बड़ी मानी जाती थी।

जुगल ने कहा, "संतोष के विषय में विचार करने के लिए आप सबको एकत्रित किया है। वह इस समय अठारह वर्ष की हो गई है। क्या मैं उसके लिए विवाह का प्रबन्ध करूँ ?"

सोमा चाची ने पूछ लिया, "किस श्रेणी में पढ़ती है, संतोष ?"

"हायर सेकेण्डरी पास कर वह बी० ए० की प्रथम श्रेणी की परीक्षा दे रही है।"

"बहुत हो गया है।"

"यह तो ठीक है, चाची ! परन्तु मैं तो उसकी पढ़ाई इसलिए करा रहा हूँ कि जब तक विवाह नहीं हो जाता, तब तक बेकार न बैठी रहे। बेकार मन शैतान का घर होता है।"

"परन्तु क्या तुमको इस कॉलेज की पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य कुछ कराने को नहीं सूझ रहा ?"

"और क्या कराऊँ ? कुछ समझ ही नहीं आ रहा।"

भगतराम ने बताया, "जुगल ! मैंने स्वयं कुछ पढ़ा नहीं, फिर भी मैंने बच्चों को पढ़ाया है। एक ने एम० ए० किया है। लड़की ने मैडिसिन की डिग्री ले ली है। शेष दो बच्चे अभी पढ़ते हैं। मैं तुमको एक बात बताना चाहता हूँ। यह पढ़ाई तो ऐसी है कि जो इसे पढ़ लेते हैं वे नौकरी ही करने की इच्छा करने लगते हैं। लड़का विनोद एम० ए० करने के बाद अच्छी-सी नौकरी की तलाश में लग गया है। दो वर्ष की भागदौड़ के पश्चात् जब वह नौकरी नहीं पा सका तो अब 'डॉक्टरेट' के लिए पढ़ाई कर रहा है। कमला की बात सुन लो। वह डॉक्टर बन गई है और लेडी हार्डिंग में नौकरी कर रही है। मैंने उसको कहा भी कि उसको नौकरी की आवश्यकता नहीं, परन्तु वह नहीं मानी और बिना मुझसे राय किये वहाँ काम करना स्वीकार कर आई है। इससे मैं यह कहता हूँ यह अजीब पढ़ाई है। जो भी पढ़ता है, वह नौकरी ही करना चाहता है।

"एक बात और है। कमला से मैंने कहा कि उसका विवाह होना चाहिए, तो कहने लगी कि उसने निश्चय कर लिया है कि वह विवाह नहीं करेगी।"

"उसको तुम सोमा चाची से मिला दो।" जुगल ने हँसते हुए कहा, "इसके पास जादू है। यह उसको सन्मार्ग दिखा देगी। इसने तो कुन्तल को, जो भगवान् के नाम को गालियाँ दिया करती थी, उसकी भक्तिन बना दिया है।"

सोमा हँस पड़ी। उसने कहा, "यह नौकरी करना आज का युग-धर्म है। यह ठीक न होते हुए भी एक बहुत बड़ा आकर्षण रखता है। इसका विरोध करने का केवल एक ही उपाय है और वह है बच्चों में आत्म-विश्वास पैदा करना। वर्तमान शिक्षा लेने वालों में आत्म-विश्वास बनता नहीं, प्रत्युत बिगड़ता ही है। आत्म-विश्वास रखने वाले युवक प्रथम तो नौकरी करेंगे ही नहीं। अगर कहीं कर भी बैठे तो शीघ्र ही अपने अफ़सरों से लड़कर नौकरी छोड़ आएँगे।"

"पर चाचीजी !" भगतराम का प्रश्न था, "यह आत्म-विश्वास कहीं किसी दुकान पर बिकता हो तो मोल लाकर बच्चों के गले में बाँध दूँ। यही तो समझ में नहीं आता कि कहाँ से लाया जाए।"

"देखो भैया ! कभी घर में और बच्चों के सामने रामकथा का पाठ

होता है।"

"हमारे घर में पहले तो, जब पिताजी जीवित थे और हम उनके साथ रहते थे, रामकथा हो जाती थी। परन्तु जब से मैं उनसे पृथक् हुआ हूँ, यह कभी हुई नहीं। एक-आध बार मैं रामलीला देखने गया तो कमला ने मेरी हँसी उड़ा दी। कहती थी, 'बड़े-बड़े यूरोपियन इतिहासज्ञ कहते हैं कि राम-नाम का कोई व्यक्ति कभी नहीं हुआ'।

"इस पर मैंने कहा, 'तो ये लाखों की संख्या में, केवल दिल्ली में, और पूर्ण भारतवर्ष में करोड़ों स्त्री-पुरुष किसकी लीला देखने जाते हैं?'

"इस पर कमला ने कह दिया, 'पिताजी! यह मैं ही नहीं, प्रत्युत महात्मा गांधी भी कहते हैं कि यह खयाली कहानी है। मनुष्य के अन्दर नेकी और बदी के संघर्ष का अलंकार बाँधा गया है।'

"भला बताओ जब महात्मा गांधी भी यही मानते हैं तो हमारे घर में तो लोग गांधीजी के भक्त हैं। वे भला कैसे राम की कथा करा सकते हैं?"

सोमा चाची तो अवाक्-सी रह गई। फिर कुछ विचारकर बोली, "तभी तो महात्माजी के चेले कांग्रेसी आत्म-विश्वास-विहीन, कभी मुसलमानों से डरते हैं और कभी सिखों से। कभी पाकिस्तान के सामने गिड़गिड़ाते हैं तो कभी चीन के सामने। मैं अब समझती हूँ कि गांधीजी भी लाठी लेकर लड़ने वालों के सामने क्यों गिड़गिड़ाते रहे हैं। गांधीजी को पाकिस्तान बनने से पूर्व, छुरे घोंपने वाले मुसलमानों के सामने झुकने की बात भी समझ में आ रही है। जिसको परमात्मा और अपनी आत्मा पर विश्वास नहीं, उसमें आत्म-विश्वास न होने से स्वाभिमान भी नहीं रहता।

"पता नहीं यह कहाँ तक सत्य है कि उन दिनों गांधीजी से जब पूछा गया कि वे बहनें क्या करें, जिनके साथ पंजाब में मुसलमान बलात्कार कर रहे हैं, तो कहते हैं, गांधीजी ने कहा था कि वे बहनें अफीम खाकर आत्म-हत्या कर लें।

"ऐसी बात राम की कथा पर विश्वास न रखने वाले ही कह सकते हैं। राम-कथा पर विश्वास करने वाला तो इसके उत्तर में कहता—जैसे राम ने रावण का विध्वंस किया था अथवा जैसे हनुमान ने लंका जला डाली थी, ऐसे ही उन आततायियों का सत्यानाश कर दो।

"अब मैं समझ गई हूँ कि क्यों स्कूल-कॉलेजों में पढ़ने वाले न तो

स्वाभिमानी बन पाते हैं न ही आत्म-विश्वासी।"

"तो फिर क्या किया जाए?" जुगलकिशोर का प्रश्न था, "बच्चों को कुछ तो शिक्षा देनी ही पड़ेगी। जब और किसी प्रकार की शिक्षण-संस्थाएँ ही न हों तो क्या इनको सर्वथा अनपढ़ रखा जाए?"

"यह तो मैं नहीं कह रही। मेरा कहने का अर्थ यह है कि संतोष बहुत पढ़ चुकी है। अब उसको घर पर रखा करो। वह मुझको दोपहर के समय रामायण सुनाया करेगी।"

"परन्तु चाची! उसके लिए कई स्थानों से संदेश आने लगे हैं।"

"वह भी हो जाएगा। पहले तो उसका कॉलिज जाना बन्द करो।"

भगतराम ने व्यावहारिक बात करने के लिए पूछ लिया—"जुगल! कहाँ-कहाँ से सन्देश आने लगे हैं? उनका नाम-धाम बताओ तो बात हो। आखिर जवान लड़की को विदा तो करना ही होगा।"

"एक तो कलकत्ता के सेठ लक्ष्मीचन्द हैं। उनके पिता पंजाबी थे। वे कलकत्ता में कारोबार के लिए गए तो वहाँ एक मारवाड़ी सेठ भगोड़ीमल के पास काम करने लगे। जब वह स्वतन्त्र व्यापार करने लगे तो भगोड़ीमल ने अपनी लड़की का उनके साथ विवाह कर दिया। लक्ष्मीचन्द उनका लड़का है। इस समय कलकत्ता में नम्बर एक के आसामी हैं। मोहन पिछले दिनों दुकान के काम से कलकत्ता गया था। वहाँ सेठजी से बातचीत हुई थी। वे अपने लड़के देवरत्न के लिए पंजाबी सुन्दर गौरवर्णीय लड़की पूछने लगे। मोहन ने लड़के को देखा है। उनका संदेश मोहन के ही द्वारा आया है।"

"अच्छा और?" भगतराम का प्रश्न था।

"यहाँ दिल्ली विश्वविद्यालय में एक प्रोफ़ेसर कँवरसेन चड्ढा हैं। वे लड़की के विषय में मुझसे मिले थे। संतोष उनसे पढ़ती है।"

"और?"

"एक निर्धन माता-पिता का लड़का रमेश है। कुछ लिखता-पढ़ता रहता है। कविता, लेख, निबन्ध और कहानी लिखता है। उसके विषय में संतोष ने स्वयं कहा है।"

भगतराम ने अपना निर्णय सुना दिया, "इन सबमें नम्बर एक है सेठ लक्ष्मीचन्द का लड़का और दूसरे नम्बर पर है दिल्ली विश्वविद्यालय का प्रोफ़ेसर।"

"चाची ! तुम क्या समझती हो?" जुगल का प्रश्न था।

"मैं संतोष से बातचीत करके अपना निर्णय दूँगी।"

"तो तुम उससे रमेश के विषय में जानना चाहती हो ?"

"हाँ।"

"उसने उसके विषय में कल ही अपनी माता को बताया है।"

"तो पहले उसके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर लो। मैं लड़की से पूछूँगी, तुम लड़के के विषय में बाहरी स्रोतों से पूछताछ करो।"

सोमा चाची ने अगले ही दिन संतोष को अपने पास बैठाकर पूछ लिया, "संतोष किस श्रेणी में पढ़ती हो तुम ?"

"बारहवीं श्रेणी में !"

"क्या पढ़ाते हैं इस श्रेणी में ?"

"चाची ! मैंने तीन विषय लिए हैं—एक संस्कृत, दूसरा इतिहास और तीसरा अंग्रेज़ी।"

"इन विषयों में कॉलिज में क्या पढ़ाया जाता है !"

"खाक पढ़ाया जाता है। प्रोफ़ेसर पुस्तकालय से बहुत-सी किताबें ले जाते हैं और उनको पढ़कर, थोड़ा इस किताब से, थोड़ा दूसरी किताब से, कुछ तीसरी और कुछ चौथी-पाँचवी से पढ़कर, खिचड़ी बनाकर हमारे सामने उगल देते हैं। संस्कृत पढ़ाते हैं तो उसका अभ्यास नहीं कराते।"

"तो तुमको वहाँ की पढ़ाई से सन्तोष नहीं है !"

"संस्कृत की बात छोड़कर शेष तो यदि मुझको वे सब पुस्तकें मिल जाएँ जो प्रोफ़ेसर साहब के पास हैं, तो मैं भी ऐसा ही पढ़ा सकती हूँ।"

"संस्कृत नहीं पढ़ा सकती क्या ?"

"चाची ! संस्कृत तो आती ही नहीं। अंग्रेज़ी का व्याकरण तो हमको दसवीं श्रेणी में ही पढ़ाकर समाप्त कर दिया गया था, किन्तु बी० ए० में हम अभी संस्कृत का व्याकरण ही पढ़ रहे हैं।"

"यह तो कुछ नहीं हुआ। अंग्रेज़ी से संस्कृत अधिक पढ़नी चाहिए थी।"

"कोई पढ़ाए भी तो। चाची ! एक लड़का है रमेश। वह शास्त्री पास है। उसने संस्कृत पढ़ी है और वह धारा प्रवाह संस्कृत बोलता है तथा लिख लेता है।"

"कौन है वह ?"

"वह अब हमारे साथ अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए आता है। बहुत मेधावी विद्यार्थी प्रतीत होता है।"

"किसका लड़का है ?"

"होशियारपुर के पंडित गिरधर शर्मा थे। उनका देहान्त हो चुका है। आजकल वह अपनी माता के पास रहता है।"

"तुम उससे विवाह करना चाहती हो !"

एकाएक ऐसा प्रश्न पूछा जाने पर सन्तोष भौंचक्की हो चाची का मुख देखने लगी। उसे चुप देख चाची ने कहा, "कल तुम्हारे पिता कह रहे थे कि तुमने इस लड़के को पसन्द किया है।"

"चाची ! यह बात नहीं। बात इस प्रकार हुई थी कि दो दिन पहले माँ ने दो तस्वीरें दिखाकर मुझसे पूछा था कि कौन-सा लड़का पसन्द है।

"तब मैंने पूछ लिया, 'किस मतलब के लिए, माँ !'

"इस पर माँ ने पूछ लिया, 'लड़कियाँ लड़कों को किसलिए पसन्द करती हैं !'

"मैंने बताया, 'माँ, कॉलिज में तो लड़कियाँ लड़कों को मूर्ख बनाने के लिए चुना करती हैं।"

'सत्य !' माँ ने विस्मय से पूछा।

'हाँ, माँ ! जब वे किसी को चुन लेती हैं तो फिर उसको खूब उल्लू बनाती हैं।'

"इस पर माँ ने स्पष्ट कह दिया, 'सन्तोष ! तुम्हारे विवाह के लिए वर ढूंढा जा रहा है। अभी तक ये दो प्रस्ताव आए हैं।'

"तब मैंने अपने पास से एक चित्र माँ को दिखाते हुए कहा, 'जब निर्वाचन हो रहा है तो इसके विषय में भी विचार कर लिया जाए।'

'तो तुमने इस लड़के से बातचीत की है !' माँ ने पूछा था।

"मैंने नहीं की !' मैंने कहा, 'इस लड़के ने मुझसे बात की है। अंग्रेज़ी में वह हमारी क्लास में साथ पढ़ता है। एक बार उसने संस्कृत में धारा-प्रवाह व्याख्यान दिया था। संस्कृत के प्रोफ़ेसर ने उसके व्याख्यान की बहुत प्रशंसा की तो मैंने उससे पूछा था कि वह इतनी संस्कृत कहाँ से पढ़ गया है ?

"उसने बताया था कि उसने पिता [illegible] अष्टाध्यायी

कण्ठस्थ करा दी थी और उसके बल पर ही वह संस्कृत व्याकरण जो शास्त्री परीक्षा में पढ़ाया जाता है, केवल तीन-चार मास में ही पढ़ गया था और शेष तो अभ्यास की बात है।

"मैंने उससे कहा कि वह मुझको अष्टाध्यायी पढ़ाया करे। वह कुछ महीनों से मुझको कॉलेज के हॉल में बैठकर पढ़ाया करता है।

"एक दिन उसने मुझको अपना चित्र देकर कहा, 'सन्तोष ! यह चित्र मैं तुमको इक्कीसवें जन्म-दिन की स्मृति में देता हूँ।'

"मैंने उसको बधाई दी और कह दिया, 'मैं आपका चित्र अपने एलबम में लगा लूँगी।'

"उसने पूछ लिया, 'तुम्हारा जन्म-दिन कब है ?'

"मैंने बताया, 'जून मास में।'

"इस पर वह बोला, 'मैं आशा करता हूँ कि इसके प्रतिकार में तुम भी मुझको अपना चित्र दोगी। मुझको इससे बहुत प्रसन्नता होगी।'

'मेरे पास चित्र बहुत हैं, परन्तु इतना अच्छा बना कोई नहीं।'

'अच्छे बने चित्र की आवश्यकता नहीं। जैसा भी होगा, तुम्हारा होने पर निस्सन्देह ही अच्छा होगा।'

"बस यही बात हुई है। मेरा जन्मदिन अभी आया नहीं, इसलिए मैंने अपना चित्र उसको दिया नहीं।"

"अच्छा, उससे आज यह पूछना कि यदि वह तुमको घर पर पढ़ाने आया करेगा तो क्या फीस लेगा ? देखो सन्तोष ! वह ब्राह्मण है और ब्राह्मण को दान-दक्षिणा लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। मैं समझती हूँ कि एक तो तुमको वह अच्छी प्रकार पढ़ा सकेगा और दूसरे उसकी कुछ सहायता भी हो जाएगी।"

वास्तव में सोमा चाची लड़के के स्वभाव को भली-भाँति समझना चाहती थी। इसी कारण उसने बहाना बनाकर उसको घर बुलाने का आयोजन किया था।

सन्तोष ने उसी दिन रमेश के सामने अपनी चाची का प्रस्ताव रख दिया। उसने कहा, "मिस्टर रमेश ! मेरी चाची चाहती थी कि आप मुझको घर पर ही एक घंटा नित्य पढ़ाने आ जाया करें, बताइए, क्या फीस लेंगे ?"

"तुम मुझको यहाँ क्या फीस देती हो ?

"कितने महीने हुए हैं आपको पढ़ाते हुए ?"

"मेरा विचार है कि तीन महीने से ऊपर हो गये हैं।"

"तो जितना आप उचित समझें, बता दीजिए। मैं कल ला दूँगी।"

"मेरा यह अभिप्राय नहीं है सन्तोष ! मेरे पिता बहुत ही विद्वान् व्यक्ति थे। फिर भी वे पढ़ाने की फीस नहीं लिया करते थे। एक बार मेरी माताजी ने कहा था कि यदि पिताजी थोड़ी-थोड़ी फीस भी विद्यार्थियों से ले लिया करें तो उनका निर्वाह बड़े मज़े में हो जाएगा। पिताजी ने कहा था कि वे ब्राह्मणत्व बेचने नहीं जाएँगे।

"वे पढ़ाते थे गरीब ब्राह्मणों के लड़कों को। इस कारण उनको कोई भी विद्यार्थी दान-दक्षिणा में कुछ भी नहीं दे सकता था। अतः जो कुछ पुरोहिताई से मिलता था, उससे ही निर्वाह चलता था।"

"अब कैसे निर्वाह होता है ?"

"यहाँ दिल्ली में हमारे एक यजमान रहते हैं। उनके घर के एक कमरे में मैं अपनी माँ के साथ रहता हूँ। वे हमको अन्न-वस्त्र देते हैं। कभी-कभी वे पूजा-पाठ अथवा किसी विवाहादि संस्कार पर ले जाते हैं तो कुछ नकद भी मिल जाता है।"

"बात तो वही हुई। फीस के नाम पर नहीं लेंगे तो दान-दक्षिणा के नाम पर लेंगे।"

"संतोष ! दोनों में भारी अन्तर है। फीस निश्चय करके माँगी जाती है। दान-दक्षिणा यजमान स्वेच्छा से, अपने सामर्थ्यानुसार देता है। पढ़ाई-कार्य की उजरत मैं नहीं लूँगा।"

बात सन्तोष की समझ में आ रही थी। उसने कह दिया, "तब तो ठीक है, किन्तु आप मुझको घर पर पढ़ा सकेंगे ?"

"कहाँ है तुम्हारा घर ?"

"दरियागंज। यदि आप कॉलेज के समय के पश्चात् चल सकें तो मैं आपको साथ लेकर मकान दिखा दूँगी।"

रमेश कुछ विचार कर बोला, "चला चलूँगा।"

उस दिन संतोष रमेश को अपने घर ले गई। उसने उसको बैठक में बैठाकर सोमा चाची को अपना उससे पूर्ण वार्त्तालाप सुना दिया और घर पढ़ाने के विषय में भी बता दिया। चाची उससे मिलने के लिए बैठक में चली

आई। सन्तोष ने चाची का परिचय दे दिया, "रमेशजी, ये हैं मेरी चाची। इन्होंने ही कहा था कि आप यहाँ आकर पढ़ा जाया करिए।"

"तो मैं आ गया हूँ। केवल समय निश्चित करना शेष है।"

"वह अभी कर लेते हैं।"

इस समय चाची ने सन्तोष से कहा, "कुन्तल चाची को कहो, चाय बना लाए।"

रमेश ने कहा, "कोई आवश्यकता नहीं है।"

"बेटा! घर पर ब्राह्मण आए तो मुख मीठा कराये बिना कैसे भेज सकती हूँ। जाओ सन्तोष! और देखो, अपनी माताजी से कहना, मिठाई भी निकाल दें।"

जब संतोष गई तो सोमा चाची ने कहा, "आपको यहाँ आने का कष्ट इस कारण दिया है कि सन्तोष और हम सब चाहते हैं कि वह संस्कृत भाषा और फिर धर्म-ग्रन्थ पढ़कर, समझ सके। हमारा विचार हो रहा है कि उसको कॉलिज भेजना बन्द कर दें। घर पर उसके विवाह की चर्चा होने लगी है।"

"बहुत अच्छी बात है। यदि यह बात है तो मुझको यहाँ आकर पढ़ाने में बहुत प्रसन्नता होगी।"

"एक बात और है। दो-तीन दिन हुए, सन्तोष की माँ ने उसको दो स्थानों से आये सन्देशों के विषय में बताकर लड़कों के चित्र दिखाए थे। जब सन्तोष को पता चला कि वे चित्र किनके हैं और किस मतलब से आए हैं तो उसने एक चित्र अपनी पुस्तक में से निकालकर अपनी माँ को देकर कहा कि इस चित्र पर भी विचार कर लें। उसकी माँ जब चित्र वाले लड़के का परिचय पूछने लगी तो वह बताने लगी, 'होशियारपुर के एक पंडित गिरधर शर्मा के सुपुत्र हैं और मेरे साथ कॉलिज में अंग्रेज़ी पढ़ते हैं।"

रमेश हँस पड़ा। हँसकर उसने कहा, "सन्तोष पगली है। चाचीजी, कॉलिज में उसके सरल व्यवहार को देख प्रायः लड़के उसको पगली ही कहकर पुकारा करते हैं। देखिए, यह मेरी श्रेणी में पढ़ती है। साथ ही मुझसे भी पढ़ती है। मेरे मन में उसके प्रति बहन की भावना ही है। मैंने चित्र तो उसको इस अर्थ से दिया था, जिससे वह भी निःसंकोच भाव से अपना चित्र मुझको दे सके। मैं अपने मित्रों के चित्रों की एक एलबम रख

रहा हूँ।"

सोमा चाची यह सुन स्तब्ध रह गई। इस समय कुन्तल चाय बनाकर ले आई। साथ ही राधा, रमणी और रेवा भी आ गईं। उस समय सन्तोष भी वहीं खड़ी थी। सोमा ने सन्तोष को बहाना बनाकर वहाँ से भेज दिया। उसने कहा, "सन्तोष! देखो, बच्चे स्कूल से आ रहे हैं, सबको खाने के कमरे में बिठाकर उनको चाय-दूध पिलाओ।"

सन्तोष समझ गई कि उसको वहाँ से चले जाने के लिए कहा जा रहा है। वह चुपचाप कमरे से निकल गई।

उसके जाने पर सोमा चाची ने सन्तोष की माँ और चाचियों का परिचय रमेश से करा दिया और कहा, "बेटा! सन्तोष पगली है अथवा बुद्धिमान, यह प्रश्न विचारणीय नहीं है। मैं बता रही थी कि उसने तुम्हारा चित्र अपनी माताजी को, तुम्हें अपना पति बनने योग्य मानकर दिया है। मेरी भी यह इच्छा है कि मैं इस विषय में तुम्हारे विचार जानूँ।"

"मैं यही कह रहा हूँ कि सन्तोष को मेरे विषय में भ्रम हो गया प्रतीत होता है। मैं उसको लड़की तो कह नहीं सकता। यों तो गुरु शिष्या को लड़की कहने का अधिकार रखता है। मैं अभी आयु में बहुत छोटा हूँ, इस कारण इसको अपनी छोटी बहन ही कहूँगा। भला इससे विवाह की बात कैसे सोच सकता हूँ?

"एक बात और भी है! मेरी सगाई होशियारपुर में ही हो गई थी। उस लड़की के माता-पिता भी विवाह के लिए लिख रहे हैं।"

"कितनी बड़ी है वह लड़की?"

"मैंने देखी नहीं। उसके विषय मे मैं कुछ नहीं जानता। मैं जब मात्र सात-आठ वर्ष का था पिताजी ने अपने एक मित्र की पुत्री के साथ मेरी सगाई कर दी थी। अब सुना है वह सोलह वर्ष की हो गई है। उसके माता-पिता विवाह की जल्दी मचा रहे हैं। मैं अभी टालमटोल कर रहा हूँ। एक तो मैं एम० ए० करना चाहता हूँ। दूसरे, मेरा अभी घर-घाट ही नहीं। माँ कुछ परेशान मालूम होती है।"

"फिर भी तुमने संतोष को पढ़ाने की फ़ीस लेने से इनकार कर दिया है। यह तो ठीक नहीं, बेटा!"

"चाचीजी! पढ़ाना ब्राह्मण का धर्म है। मैं ब्राह्मण का पुत्र हूँ और

यह भलीभाँति जानता हूँ कि पूर्व-जन्म में मैंने बहुत ही पुण्य-कर्म किये होंगे जो इस जन्म में ब्राह्मण के घर उत्पन्न हुआ हूँ। मैं उस धर्म से पतित होना नहीं चाहता।"

"तो निर्वाह कैसे होगा? और फिर उस बेचारी को, जिसके साथ आपके पिता आपको बाँध गये हैं, कब तक प्रतीक्षा कराओगे?"

"परमात्मा ही कोई मार्ग निकाल देगा। परन्तु चाचीजी! यह फीस लेने का मार्ग तो उचित नहीं।"

रमेश जाने लगा तो सोमा चाची ने पूछ लिया, "कहाँ रहते हैं आप?"

"राजपुरा रोड पर। वहाँ हमारे एक यजमान श्री महेशचन्द्र गुप्ता रहते हैं। उनकी कोठी में ही एक कमरा मिला हुआ है।'

"अच्छा देखो। अपनी माताजी से मिलाओगे कभी?"

"कुछ विशेष काम है उनसे?"

"तुम-जैसे पुत्र की माँ से मिलने का सौभाग्य क्या कम विशेष काम है? अभी तो तुम बस में आने-जाने के लिए यह दस रुपये रखो। हम भी तुम्हारे यजमान बन जाएँ तो ठीक नहीं रहेगा क्या?"

रमेश चला गया तो कुन्तल ने कह दिया, "कुछ सीमा से अधिक सरल चित्त हैं ये माँ-पुत्र।"

"हाँ कुन्तल, यह गुण है, अवगुण नहीं।"

कुन्तल देख रही थी कि इतनी निर्धन अवस्था में भी यह लड़का अपने-आपको परमात्मा के भरोसे रखकर प्रसन्न-चित्त विचरता है।

रमेश अब नित्य सन्तोष को पढ़ाने आने लगा। सन्तोष ने कॉलेज छोड़ दिया था। उसकी सगाई कलकत्ता के लक्ष्मीचन्द के लड़के देवरत्न से होनी तय हो गई थी।

सन्तोष ने अब सब-कुछ छोड़कर संस्कृत पढ़नी आरम्भ कर दी थी। अपनी पढ़ाई के साथ मध्याह्न के समय वह सोमा चाची को रामायण सुनाने लगी थी। इसको सुनने के लिए पहले कुन्तल और बाद में दूसरी बहुएँ भी सोमा के कमरे में एकत्रित होने लगीं।

एक दिन लक्ष्मीकान्त अपने लड़के देवरत्न के साथ दिल्ली आया और सगाई का शगुन ले गया। इस समय लड़के-लड़की की देखा-देखी भी हुई।

सगाई के साथ विवाह की तिथि और कार्यक्रम भी निश्चित हो गया।

फाल्गुन सुदी सप्तमी को विवाह का मुहूर्त निकला। यह निश्चित हो गया कि बरात एक दिन पूर्व कलकत्ता से आएगी। उसमें एक सौ एक आदमी होंगे। वे दिल्ली में अपना मकान लेकर उसमें रहेंगे। सप्तमी को बरात ग्यारह बजे वधू के घर पर पहुँचेगी। यहाँ भोजन होगा और दो बजे विवाह आरम्भ होगा। सायं पाँच बजे चाय तथा मनोरंजन का आयोजन होगा। मनोरंजन के लिए बारात के साथ नृत्य-संगीत आदि का प्रबन्ध होगा। यदि लड़की वाले भी कोई वैसा ही आयोजन कर सकें तो और भी ठीक है। सायं नौ बजे विदाई होगी। अगले दिन बरात लौट जाएगी।

उस समय दिसम्बर का महीना था। सन्तोष के विवाह में अभी ढाई महीने शेष थे। यह यत्न किया जा रहा था कि सन्तोष इस बीच पूर्ण अष्टाध्यायी पढ़ ले। कण्ठस्थ तो बाद में भी हो जाएगी।

रमेश अब दो घण्टे नित्य पढ़ाने आया करता था। एक विशेष बात यह हो रही थी कि उसकी माँ नित्य सोमा चाची से मिलने के लिए आने लगी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि दरियागंज में एक बड़ा-सा मकान भाड़े पर लेकर, उसमें संस्कृत की रात्रि-पाठशाला खोल दी गई। रमेश वहाँ का अध्यापक नियुक्त हो गया। यह घोषणा कर दी गई कि वहाँ सायं सात बजे से रात के दस बजे तक निःशुल्क संस्कृत पढ़ाई जाएगी।

मकान के नीचे की मंज़िल में संस्कृत की पढ़ाई होती थी। ऊपर की मंज़िल में रमेश के रहने का प्रबन्ध कर दिया गया। उसका तथा पाठशाला का पूर्ण खर्चा जुगलकिशोर की कम्पनी देती थी। यह प्रबन्ध होते ही रमेश का भी विवाह हो गया। उसकी पत्नी साधारण गणित इत्यादि ही पढ़ी हुई थी। साधारण हिन्दी जानती थी। रूप-रेखा में भी साधारण ही थी। फिर भी रमेश और उसकी माँ अति प्रसन्न थे।

विवाह के उपरान्त एक दिन सोमा चाची ने पूछ लिया, "रमेश! बहू कैसी है?"

"चाची! बहुत अच्छी है। नित्य प्रातःकाल पूजा-पाठ करती है। आते ही भोजन आदि और घर की व्यवस्था में लग गई है। इससे माताजी को बहुत आराम मिला है।"

"संस्कृत पढ़ी है क्या?"

"नहीं चाची ! मैं उसको यह देव-वाणी पढ़ने के लिए कह रहा हूँ। परन्तु वह अभी टालमटोल कर रही है। मेरा विचार है कि उसको सन्तोष बहन की शिष्या बना दूँ।"

"परन्तु सन्तोष तो अब शीघ्र कलकत्ता भेजी जा रही है।"

"कब तक ?"

"फाल्गुन सुदी सप्तमी को तो वह इस घर से विदा हो रही है और अष्टमी को वह कलकत्ता चली जाएगी।"

"तब तो मेरी यह योजना सफल नहीं होगी।"

"उसको मेरे पास भेज दिया करो मैं, उसको पढ़ाऊँगी।"

"चाची ! तुम कितनी पढ़ी हो ?"

"बेटा ! मैं वह विद्या पढ़ी हूँ जो तुम नहीं पढ़ । मन को प्रेरणा देने की विद्या मुझको आती है। मैं आशा करती हूँ कि दो-तीन महीने में ही वह तुम्हारी पाठशाला में पढ़ने लगेगी।"

रमेश हँसने लगा। हँसकर बोला, "तो मैं उसको आपकी शिष्या बना दूँगा। हाँ, पहले तो मन में किसी काम को करने की इच्छा उत्पन्न होनी चाहिए, उसके बाद ही तो वह काम पूर्ण हो सकता है।"

"देखो रमेश बेटा ! पूर्ण तो भगवान् ही है। वह तो हम सब बनने का यत्न कर रहे हैं। जितना भी इस जन्म में बन जाएँगे, ठीक है।"

दिल्ली जैसे नगर में संस्कृत के विद्यार्थी, और वह भी प्राचीन शैली से पढ़ने वाले बहुत कम थे। विज्ञापन देने और अन्य प्रचार से भी पाँच विद्यार्थियों से अधिक एकत्रित नहीं हो सके।

संस्कृत पढ़ने की प्राचीन शैली परिश्रम अधिक चाहती है। परन्तु जो योग्यता विद्यार्थी एम० ए० तक संस्कृत पढ़ने से प्राप्त करते थे, उससे अधिक योग्यता प्राचीन ढंग से पढ़ने से पाँच वर्ष में प्राप्त हो सकती थी। यह सब कुछ विज्ञापनों में बताया गया था, परन्तु इस युग में विद्यार्थियों के शरीर परिश्रम करने के योग्य रह नहीं गये थे।

फिर भी जब जुगलकिशोर ने बताया कि प्रथम मास में केवल पाँच विद्यार्थी पढ़ने के लिए आये हैं, तो सोमा चाची ने कह दिया, "फिर भी ठीक है। स्कूल-कॉलिजों की शिक्षा तो नौकरी के लिए तैयारी मानी जाती है और यह हमारी पाठशाला तो [illegible] के लिए किसी प्रकार

का आश्वासन नहीं दे सकती। यह तो पढ़ाई के लिए ही पढ़ना होता है। इसमें पढ़ने वालों की संख्या तो कम होगी ही।"

कलकत्ता से बरात आई तो वह कर्ज़न रोड पर लक्ष्मीचन्द के एक मित्र की कोठी पर ठहरी। कोठी में खेमे और शामियाने इत्यादि लगाये गए थे, जिससे सब बराती दो रात के लिए ठहर सकें।

जब बरात आई तो उनके जलपान का प्रबन्ध जुगलकिशोर की ओर से कर दिया गया। बरात में स्त्रियों की संख्या भी पर्याप्त थी। इस कारण जहाँ जलपान का प्रबन्ध पुरुषों के लिए पुरुष कर रहे थे, वहाँ स्त्रियों के लिए कुन्तल पहुँच गई थी। स्त्रियों के स्वागत तथा जलपान का सारा प्रबन्ध उस पर डाला गया था। वैसे जलपान तथा भोजन के प्रबन्ध का ठेका होटल को दिया गया था। घर के आदमी तो केवल यह देखने के लिए पहुँचे थे कि होटल वालों की असावधानी के कारण किसी बराती को कष्ट न हो।

स्त्रियाँ कोठी के कमरों में ठहरी थीं। एक कमरे में कुछ स्त्रियाँ थीं। उस कमरे में मृदंग, तानपूरा, वायलन इत्यादि साज़ पड़े देख, कुन्तल समझ गई कि यह नाच-गाने की पार्टी है। कुन्तल में पूछ लिया, "बहनजी! आप यहाँ कमरे में ही जलपान करेंगी अथवा बाहर शामियाने में?"

उन में से एक बोल उठी, "हम सब बाहर आ रही हैं।"

"तो आइए! सब सामान तैयार है।"

वह स्त्री, जिसने उत्तर दिया था, कुन्तल का मुख ध्यान से देख रही थी। कुन्तल को यह विचित्र प्रतीत हुआ। फिर भी उसे दूसरे कमरों में जाना था, जिससे अन्य स्त्रियों को भी बाहर जलपान का निमंत्रण दे सके। वह चली गई।

सबको कहकर जब वह बाहर लॉन में आई तो संगीत-पार्टी चाय पी रही थी। होटल के बैरे मिठाई, केक, पेस्टरी इत्यादि उनके सामने रख रहे थे। कुन्तल वहाँ आई तो उसी स्त्री ने पुनः कुन्तल की ओर ध्यान से देखना आरम्भ कर दिया। अब तो कुन्तल ने भी उसकी ओर देखा और तुरन्त पहचान गई।

वह वही स्त्री थी, जिसको कुन्तल ने लखनऊ में, अपने पति के फ्लैट में उसकी द्वितीय पत्नी के रूप में देखा था। फिर भी उसका संदेह बना रहा।

उसका अनुमान था कि यह गाने-बजाने वालों की पार्टी है और भला कुलवन्त की पत्नी वहाँ इस काम के लिए कैसे आ सकती थी?

कुन्तल एक कुर्सी पर उसके सामने बैठ गई। उसने पूछ लिया, "आप सब खास कलकत्ता से आई हैं अथवा किसी अन्य स्थान से भी?"

एक ने उत्तर दिया, "हम कलकत्ता से आई हैं, परन्तु वहाँ की रहने वाली नहीं हैं।"

"वह तो आपकी वेश-भूषा से प्रतीत होता है।"

वह स्त्री, जो कुन्तल की ओर बहुत ध्यान से देख रही थी, चुप थी और कुछ कह नहीं रही थी। उसी ने, जो परिचय दे रही थी, कहा, "हम इस बरात के साथ संगीत का कार्यक्रम करने के लिए आई हैं। हमारे साथ दो पुरुष भी हैं—एक मृदंग बजाता है और दूसरा वायलन। ये हमारी पार्टी की मुख्य गायिका हैं।" उसने उसी स्त्री की ओर संकेत कर दिया, जिसको कुन्तल अपनी सौत समझ रही थी।

परिचय देने वाली ने आगे कहा, "यह हैं सौभाग्यवती निर्मला रानी। शास्त्रीय संगीत करती हैं, ठुमरी-कजरी बहुत अच्छा गाती हैं।"

कुन्तल के सन्देह का निवारण हुआ। इस पर उसने उत्तर देती हुई स्त्री से पूछ लिया, "और आप किस कला की ज्ञाता हैं?"

"मैं तो नृत्य करती हूँ। मणिपुरी-नृत्य में प्रवीण मानी जाती हूँ।"

"हमको आपकी कला देखने का सौभाग्य मिलेगा। कल पाँच बजे से रात के नौ बजे तक का कार्यक्रम रखा हुआ है। हमने भी बम्बई से विख्यात संगीतज्ञ श्री रानाडे को बुलाया हुआ है। वे कल प्रातः हवाई जहाज से आने वाले हैं।"

"रानाडे! तब तो बहुत आनन्द आएगा। वैसे तो आज सायंकाल भी दो घण्टे का हमारा कार्यक्रम इस स्थान पर है।"

"आज रात भी सुनूँगी। मैं तो आप लोगों की ही सुख-सुविधा की देख-रेख के लिए यहाँ आई हुई हूँ।"

इतना कह कुन्तल उठी और दूसरे कमरे से आई स्त्रियों से पूछने के लिए दूसरी मेज पर जा बैठी। उनसे पूछ वह तीसरे कमरे की स्त्रियों की तीसरी मेज़ पर मिलने जा पहुँची। इस प्रकार वहाँ [illegible] वह कोठी की ओर जाने लगी तो सौभाग्यवती निर्मला उसके साथ चलती हुई कहने

लगी, "हमारी सुख-सुविधा का प्रवन्ध वहुत ठीक है।"

"और वताइए। जहाँ तक सम्भव होगा, आपकी आवश्यकताएँ पूर्ण करने का यत्न किया जाएगा।"

"बाई द वे, आपको कहीं देखा प्रतीत होता है।"

इस बात को सुन पुनः कुन्तल का सन्देह हरा-भरा हो गया। उसने खड़ी होकर पुनः उस स्त्री की ओर देखा। उसको फिर वही सूरत-शक्ल सामने खड़ी दिखाई दी, जो उसकी सौत की थी। इस बार उसने अपना संशय निवारण करने के लिए पूछ लिया, "आप कभी नागपुर में भी थीं?'

"ओह, अब समझ गई हूँ! आप एक बार कुलवन्तराय का पता पूछने हमारे मकान पर आई थीं। ठीक है न?"

"सन्देह हो रहा था, परन्तु विश्वास नहीं होता था। कुलवन्तजी कहाँ हैं?"

"ही इज़ ए रास्कल। क्षमा करना बहनजी! वह सम्भवतः आपका सम्बन्धी है और मुझको उसकी आपके सम्मुख निन्दा नहीं करनी चाहिए। परन्तु मैं विवश हूँ।"

इस समय वे उस कमरे के बाहर बरामदे में खड़ी थी, जिसमें सब गाने-बजाने वाली ठहरी थीं। कुन्तल ने निश्चय कर लिया था कि यदि इस औरत को उसके कुलवन्त से सम्बन्ध का ज्ञान नहीं, तो वह बताएगी भी नहीं और स्वयं उसके विषय में सब सूचना प्राप्त करने का यत्न करेगी। इस कारण उसने कहा, "मलिन्द बहन! चलिए, पृथक् में बात करेंगे।"

मलिन्द की आँखें तरल हो गई प्रतीत होती थीं। इनको वह अपनी साथिनों से छिपाकर रखना चाहती थी। इस कारण वह कुन्तल के साथ चल पड़ी। दोनों खाने वाले टैंट से दो कुर्सियाँ उठा लाईं और कोठी के लॉन के एक एकान्त कोने में बैठकर बातें करने लगीं।

कुन्तल ने पूछ लिया, "यह सब कैसे हुआ?"

मलिन्द ने बताया, "मेरे एक लड़का हुआ था। तत्पश्चात् उनकी बदली सिंगापुर हो गई। वहाँ उनको सौ पौण्ड मासिक वेतन मिलने लगा। हमारा खर्च बहुत कम था, अतः इनके पास रुपया बचने लगा। वे पहले मद्य-सेवन करने लगे, फिर वहाँ एंग्लो-इंडियन अथवा चीनी लड़कियों के साथ आवारागर्दी करने लगे। एक ही वर्ष में इनका खर्च इतना बढ़ गया

कि हमें खाने-पीने की दिक्कत होने लगी। मैंने जब कहा तो इन्होंने कह दिया कि मैं भी कुछ काम करना आरम्भ कर दूँ। इन्होंने यत्न कर मुझको वहाँ एक फर्म में बिक्री करने वाली लड़की के रूप में नौकर करा दिया। मुझको दस पौण्ड प्रति सप्ताह वेतन मिलने लगा। मैं दो पौण्ड प्रति सप्ताह एक नर्सिंग होम में बच्चे की परवरिश के लिए दे देती थी और शेष आठ पौण्ड में निर्वाह करने लगी।

"अब वे घर में केवल शनिवार को आते, रात-भर रहते और मुझको मार-पीटकर मेरी जमा-पूँजी ले जाते। इसका अर्थ यह था कि इनका सौ पौण्ड मासिक में भी खर्च नहीं चलता था।

"छः मास तक ऐसा ही चलता रहा। मैंने अपने स्कूल के दिनों में शास्त्रीय संगीत सीखा था। एक शनिवार को मैं अपने जीवन से बहुत ऊब गई थी। मुझको मेरा वेतन मिला था। मैं अपनी दुकान से नर्सिंग होम में गई। वहाँ मैंने दो पौण्ड जमा कराए। अपने बच्चे से मिली और उदासचित्त घर की ओर जा रही थी कि एक थियेटर के बाहर एक पोस्टर पढ़ने खड़ी हो गई। पोस्टर था—'इण्डियन क्लासिकल म्यूज़िक राने एण्ड पार्टी।'

"मैंने अपने पति से बचने के लिए, हॉल के सामने के रेस्टोराँ में भोजन किया। दस शिलिंग का सबसे बढ़िया दर्जे का टिकट लेकर बैठ गई। रात के नौ बजे गाना आरम्भ हुआ।

"जब तीन-चार आइटम हो चुके तो मेरी समझ में आया कि ये सब तो मुझसे भी कम जानते हैं। कम्पनी के मैनेजर ने कुछ ऐरा-गैरा लड़कियों को लाइट-म्यूज़िक सिखाकर रुपये ठगना आरम्भ किया हुआ था।

"हॉल खचाखच भरा था, परन्तु कोई रस नहीं ले रहा था। मेरे मन में विचार आया कि यदि नौकरी ही करनी है तो इस कम्पनी में कर लूँ। दुकान से तो अधिक ही मिलेगा।

"मैंने जेब से फाउन्टेन पैन निकाला और अपनी पॉकिट बुक से एक पन्ना फाड़कर उस पर अंग्रेज़ी में लिखा, 'अभी तक जो संगीत हुआ है, वह न तो हिन्दुस्तानी क्लासिकल है, न ही मॉडर्न। यदि आप ऑडियेंस को वास्तव में शास्त्रीय संगीत सुनवाना चाहते हैं, तो एक आइटम मैं बिना आपसे एक भी पैसा लिये सुनाने को तैयार हूँ।'

'मैंने वह चिट मिस्टर राने के पास भिजवा दी। नीचे अपना नाम लिख

दिया। दो मिनट के पश्चात् एक वयोवृद्ध पुरुष आकर मेरे पास बैठ गया और पूछने लगा, 'आप क्या गाएँगी !'

''मैंने कह दिया, 'ध्रुपद, खयाल, ठुमरी, भजन, जो आप कहें।'

उस वृद्ध आदमी ने कहा, 'मैं राने हूँ। हमारी कम्पनी में एक श्री छावड़ बहुत अच्छा गाने वाले थे। जब मैंने इस थिएटर वालों से कान्ट्रेक्ट कर लिया तो छावड़े हवाई जहाज़ से टोकियो भाग गया है। मुझको संदेह है कि मेरे किसी शत्रु ने उसको कुछ ले-देकर भगा दिया है।

'परिणाम यह हो रहा है कि मेरी कम्पनी का दिवाला निकलेगा। यह भरा हुआ हॉल तो आप इसलिए देख रही हैं कि एक सप्ताह के लिए बुकिंग पहले ही हो चुकी थी। आज दूसरा दिन है और आज ही मैंने सुना है कि दस शिलिंग का टिकट आठ शिलिंग का बिका है। यदि एक-दो दिन और यही हालत रही तो सम्भव है कि लोग कुर्सियाँ इकट्ठी कर थियेटर को आग लगा दें। ''मैं आपको अवसर दे सकता हूँ। 'डूबता क्या न करता' वाली बात है।'

''मैं उठकर उसके साथ थिएटर के पीछे चली गई। राने मुझको ड्रेसिंग-रूम में ले गया। मुझको रेशमी साड़ी, जम्पर और चमचमाते आभूषण पहनने को और थोड़ा पाउडर, रूज़ लगाने को देकर कहने लगा, ''मैं एनाउंस करने जा रहा हूँ। आप थोड़ा गले को साफ कर लें।' इतना कह वह वहाँ रखे हारमोनियम की ओर संकेत कर बोला, 'क्या नाम बोलूँ ?'

''मैं अपना नाम बताना नहीं चाहती थी। इस कारण कह दिया, 'कह दीजिए, सौभाग्यवती निर्मला राने।'

''वह वृद्ध समझ गया कि मैं एक क्षण में मलिन्द से निर्मला क्यों बन गई हूँ। इस पर वह मुस्कराया और स्टेज पर मेरा नाम और आइटम एनाउंस करने चला गया।

''उसने एनाउंस किया, 'हमारी मंडली की सर्वश्रेष्ठ गायिका सौभाग्यवती निर्मला राने, जिनकी आवाज़ कोयल के समान मीठी है, अभी एक ठुमरी सुनाएँगी। कल वे गला खराब होने के कारण स्टेज पर नहीं आ सकीं। आज वे ठीक हैं और हमको पूरी उम्मीद है कि श्रोतागण को कल जैसी निराशा नहीं होगी।'

''मैं ड्रेसिंग-रूम में बैठी यह घोषणा सुन रही थी। एक क्षण के लिए

मुझको चिन्ता हुई, परन्तु अपने चित्त को स्थिर कर और अपने मन में निश्चय कर कि क्या गाना है, मैं स्टेज पर जा पहुँची।

"पहली ताली तो मेरे सौन्दर्य के कारण बजी। तत्पश्चात् मैंने सारंगी बजाने वाले को कह दिया, "मैं पीलू की ठुमरी गाऊँगी।' पश्चात् स्वर साधने लगी।

"आवाज़ निकलते ही श्रोतागण, जो पहले गाने वालों के समय परस्पर बातें कर रहे थे, चुप हो गए। मैंने गाया—

न करो बरजोरी कान्हा,
अब पाँव परूँ मैं तोरे।

"जब यह स्थाई गा रही थी तो पूर्ण हॉल में शान्ति स्थापित हो गई। मैं भी उत्साहित हो खुलकर गाने लगी। अनेक स्वर-विन्यासों में उक्त स्थाई गाकर मैंने अन्तरा गाया—

यमुना तट पर, बाँसुरी धुन सुन
गई बावरी, सुध-बुध बिसरी।
न करो बरजोरी,
पाँव परूँ मैं तोरे।

"दस मिनट के इस आइटम ने हॉल में रस भर दिया। जब मैंने गाना बन्द किया तो हर ओर से 'वन्स मोर, वन्स मोर' की आवाज़ें आने लगीं। मैं स्टेज से बाहर आई तो राने ने हाथ जोड़कर कहा, 'एक ग़ज़ल भी गा सकेंगी क्या ?'

"मैं बोली, 'इस समय याद नहीं।' उसने कहा, 'कोई भजन ?'

"मैं मान गई तो उसने घोषणा की, 'दो अन्य आइटम के पश्चात् एक भजन सौभाग्यवती निर्मला राने गाएँगी।'

"इस घोषणा का स्वागत हुआ। मैंने पहले दिन पाँच गाने गाये। जब मैं वहाँ से आने लगी तो रात के बारह बजे थे। राने ने एक लिफ़ाफ़े में मुझको कुछ देना चाहा, परन्तु मैंने लेने से इनकार कर दिया। मेरा कहना था, "यदि आपको पसन्द है तो मुझसे कान्ट्रेक्ट कर लें।"

मिस्टर राने तैयार था अगले दिन उसको अपने घर के पते पर बुला लिया और मैं घर लौट आई। मैंने विचार कर लिया कि यदि मैंने अपने लिए स्वयं कमाना है तो [illegible] गा-बजाकर रुपया पैदा करना

अधिक ठीक होगा।

"मैं घर पहुँची तो कुलवन्तराय मकान के नीचे खड़ा-खड़ा निराश हो चला गया प्रतीत होता था। मैं उस रात हलके दिल से सोई। अगले दिन, दिन निकलते ही कुलवन्तराय आया और मुझ पर रात किसी अन्य के साथ गुज़ारने का लांछन लगाने लगा। मैंने उसको अपने वेतन में से चार पौंड देकर विदा किया। मैं अब उसके जाल से छूटने की बात विचार करने लगी। उस दिन रविवार था। मुझको काम पर नहीं जाना था। राने ग्यारह बजे अपनी कम्पनी का कान्ट्रेक्ट फार्म लेकर आ पहुँचा। मैंने एक महीने का कान्ट्रेक्ट किया—दस पौंड नित्य के हिसाब से। मैंने यह कह दिया कि मैं अपने घर वालों से यह काम चोरी करना चाहती हूँ। इस कारण मेरा नकली नाम ही घोषित किया जाए। कान्ट्रेक्ट में भी मैंने अपना नाम मलिन्द 'एलियास' निर्मला लिखा था।

"इस एक मास में मैं घर छोड़कर एक होटल में चली गई। कम्पनी का मेरे कारण बहुत लाभ हुआ। इसी कारण अब मुझसे मिस्टर राने का पक्का कान्ट्रेक्ट हो गया है। जिस दिन मेरा पब्लिक गाना-बजाना होता है, मुझको तीस पाउंड अथवा चार सौ पचास रुपये मिलते हैं और आगे-पीछे भोजन इत्यादि के लिए दस रुपये नित्य। महीने में कम-से-कम पाँच पब्लिक संगीत-समारोहों में अवश्य भाग लेना होता है।

"जब तक मैं सिंगापुर रही, कुलवन्त दुराचार में लिप्त सड़कों पर मद-मस्त पड़ा दिखाई देता रहा। उसके बाद का मुझको ज्ञान नहीं। मेरे घर से लापता होने के बाद उसने बच्चे को नर्सिंग होम से निकाल लिया था और मैं नहीं जानती कि उसे कहाँ रखा है।"

मलिन्द की कथा सुन कुन्तल को आश्चर्य हुआ। उसने कहा, "यदि हम उसकी टोह लेना चाहें तो कॉलटैक्स कम्पनी के दफ़्तर से पता चल सकता है क्या?"

"अवश्य पता चल जाएगा।"

अगले दिन विवाह के पश्चात् संगीत-समारोह के समय कुन्तल ने चाची को राने मलिन्द की ओर संकेत कर उसकी पूर्ण कथा बता दी। सोमा चाची इस कथा को सुनकर आश्चर्यचकित रह गई। उसने कहा, "हमको कुलवन्त का पता करना चाहिए।"

यह खोज विवाह के दो सप्ताह पश्चात् हाथ में ली गई। जुगलकिशोर और राधा संतोष से मिलने कलकत्ता गए तो वहाँ से हवाई जहाज़ में सवार होकर सिंगापुर जा पहुँचे।

वहाँ कॉलटैक्स के दफ्तर से पता करने पर मालूम हुआ कि कुलवन्तराय को डिसमिस हुए चार वर्ष से ऊपर हो चुके हैं। कॉलटैक्स के कार्यालय में टाइपिस्ट एक चीनी लड़की से पता चला कि वह सिंगापुर के एक स्मगलिंग करने वाले गुट में काम करता है।

बहुत खोज करने पर कुलवन्त सिंगापुर के एक चीनी मुहल्ले में पड़ा पाया गया। जुगलकिशोर उसको उठाकर टैक्सी में लाद, अपने साथ होटल में ले आया। वहाँ जब उसे होश आया तो अपने को भाई और भावज के सामने लेटे देख वह बहुत लज्जित हुआ।

पहले तो कुलवन्त ने झूठ बोलना चाहा कि वह कम्पनी से एक महीने की छुट्टी पर है। उसकी पत्नी उसे छोड़कर किसी के साथ भाग गई है और वह निराश एक चीनी औरत के साथ रहता है। परन्तु जब जुगलकिशोर ने उसके बोलने से पहले ही उसको उसका पूर्ण वृत्तान्त बताया तो वह सिर झुकाकर बैठ गया।

"कुलवन्त ! मलिन्द का लड़का कहाँ है ?"

"उसी चीनी औरत के पास है।"

"चलो, उसको लेकर वापस हिन्दुस्तान चलें।"

"क्या होगा, वहाँ ?"

"तुम नई जिन्दगी आरम्भ करोगे।"

"भैया ! अब यह सब व्यर्थ है।"

"कुलवन्त ! नहीं, चलो तुम्हारी दोनों पत्नियाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही हैं।"

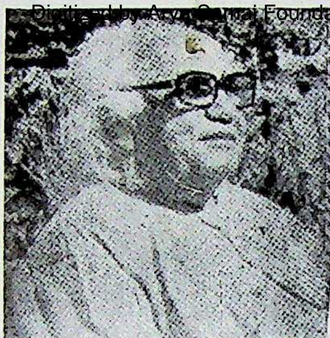
"मुझको उनके सामने जाते लज्जा आती है।"

"तो उनसे क्षमा माँग लेना।"

"कौन क्षमा करेगा मेरे इस वंचनापूर्ण जीवन को ?"

"जिनको तुमसे प्रेम होगा।"

▭▭▭



श्री गुरुदत्त

1894-1989 शिक्षा : एम.एस.सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।